Chap-3

तृतीय अध्याय

संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की सामाजिक स्थिति

समाज : परिभाषा एवं स्वरूप

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में वर्णित समाज

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में वर्णित समाज

तुलनात्मक अध्ययन

सन्दर्भानुक्रम

अध्याय 3

संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की सामाजिक स्थिति :---

समाज : परिभाषा एवं स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहता है, समाज के तमाम नियमों को स्वीकार करके उसके अनुसार अपना जीवन यापन करता है। इस सन्दर्भ में अधिक चर्चा न करते हुए सिर्फ स्मरण दिलाना चाहूँगा कि मानव सभ्यता के विकास के पूर्व आदि मानव के रूप में यही वह मनुष्य था जो एक दूसरे को मारकर खा जाता था, किन्तु धीरे-धीरे इनमें विकास हुआ, इनकी मानसिक चेतना भी विकसित हुई और इन मनुष्यों ने पशु-पक्षी आदि को मारने के बजाय उनका पालन-पोषण करना शुरू किया। यह मनुष्य अकेले रहने के बजाय समुदाय में रहने लगा और अकेले आने जाने के बजाय अपने समुदाय के साथ आने जाने लगा। धीरे-धीरे इनमें और परिवर्तन हुए । ये लोग खेती इत्यादि करके स्थायित्व ग्रहण करने लगे। समुदाय या समाज में रहने से इन्हें कई फायदे हुए, एक तो कार्य करने में सहयोग मिला और दूसरा शत्रुओं के आक्रमण से भी उन्हें सुरक्षा मिली। इसी तरह से इस वर्तमान समाज का निर्माण हुआ। इसी समाज को हमारे विद्वानों ने शास्त्र बनाया, जिसे समाज शास्त्र नाम दिया गया। समाज शास्त्रियों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया।

समाजशास्त्र के सन्दर्भ में डॉ. वात्स्यायन' का यह मानना है कि यह समाजशास्त्र एक विशिष्ट समाज विज्ञान है जो समाज के लोगों को समाज में रहना सिखाता है। उन्हीं के शब्दों में -''समाजशास्त्र एक विशिष्ट सामाजिक विज्ञान है जो सामाजिक संबंध, सामाजीकरण की

प्रक्रिया तथा सामाजिक संगठन आदि के स्वरूपों का वर्णन, वर्गीकरण विश्लेषण और व्याख्या करता है।''1

समाज शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह के अर्थ में किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी संगठित या असंगठित समाज के समूह को समाज कहा जाता है। जैसे-आर्य समाज, ब्रह्म समाज, महिला समाज, हिन्दू समाज, मुसलमान समाज, जैन समाज आदि।

मनुष्य समाज का एक अंग है। दोनों के बीच तादात्म्य एक प्राकृतिक संगठन है। यह प्रक्रिया स्थायी न होकर परिवर्तनशील एवं गतिशील रहती है। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए वह समाज में रहकर उसके नीति-नियमों का पालन करना पसंद करता है। एकाकी जीवन न जीना पड़े, समाज के लोगों के साथ मिल-जुलकर रहना पड़े, शायद इसी उद्देश्य को सामने रखकर मनुष्य ने जिस संस्था का निर्माण किया होगा वही समाज का रूप धारण कर ली होगी और उसे ही आज समाज कहा जाने लगा है। इस समाज की रचना करने का एक मात्र उद्देश्य अपने अस्तित्व की रक्षा करना रहा होगा।

समाजशास्त्र शब्द आंग्लभाषा (Sociology) सोशियोलोजी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। सोशियोलॉजी शब्द सोशियो (Socio) तथा लोजी (Logy) दो शब्दों के योग से बना हुआ है। जिसमें से सोशियो का अर्थ समाज तथा लॉजी का अर्थ शास्त्र या विज्ञान से लिया जाता है। अर्थात सोशियोलॉजी का शाब्दिक अर्थ 'समाज का विज्ञान' अथवा शास्त्र है। यह शब्द ग्रीक तथा लैटिन भाषा के संयोग से बना हुआ है। समाज शास्त्र के विद्वानों ने समाजशास्त्र में दो मूलभूत तत्वों को समाहित किया है।1-सामाजिक संरचना तथा 2-सामाजिक व्यवस्था। प्रथम से समाज के वाह्य स्वरूप को तथा दूसरे से समाज के वाह्य स्वरूप

के विपरीत पक्ष को रूपायित किया जा सकता है। समाज के विभिन्न अंग व्यावस्थित रूप से एकत्रित होकर जब तक स्वरूप या ढाँचे का निर्माण करते हैं तो उसे सामाजिक संरचना कहा जाता है। ठीक इसके विपरीत समाज की निर्माणक इकाइयाँ स्वयं द्वारा निर्धारित कार्यों के आधार पर एकत्रित रहते हुए जिस संतुलन को पैदा करती है उसे सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है।

सामाजिक संरचना को परिभाषित करना वैसे तो बहुत सरल दिखता है किन्तु उतना सरल है नहीं जितना दीखता है क्योंकि समाजशास्त्र के विद्वानों ने कोई एक ऐसी परिभाषा प्रस्तुत नहीं की है जिस पर सभी समाजशास्त्रीय विद्वान एकमत हुये हों। इसी बात को श्री एस. एफ. नैडल ने भी स्वीकार किया है उन्हीं के शब्दों में--''समाजशास्त्रीय कृतियों में सामाजिक संरचना की कोई निश्चित परिभाषा हमें देखने को नहीं मिलती है। इस वाक्यांश का प्रयोग सर्वश्री हर्बर्ट स्पेन्सर तथा दुर्खीम ने किया था और अब यह इतना सामान्य हो गया है कि इसका बहुत प्रयोग समाज शास्त्रीय कृतियों में होता है। फिर भी इसे निश्चित ढंग से परिभाषित करने के विषय में विभिन्न विद्वान अधिक सचेत प्रतीत नहीं होते हैं। विभिन्न समाज शास्त्रीय साहित्य में सामाजिक संरचना का प्रयोग विस्तृत अर्थ में तथा अस्पष्ट ढंग से किया जाता है फलतः सामाजिक संरचना व्यवस्था, संगठन संकुल प्रतिमान, प्ररूप यहाँ तक कि समग्ररूप में समाज का पर्यायवाची हो गया है।''2

समाजशास्त्रियों ने समाज की परिभाषा भिन्न-भिन्न दी है--राजनीति शास्त्री समाज को व्यक्तियों के समूह के रूप में देखता है, मानवशास्त्री आदिम समुदायों को ही समाज मानता है जबकि अर्थशास्त्री आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों के समूह को समाज कहता है।3

समाज की परिभाषा को निश्चित करना कठिन ही नहीं बल्कि मुश्किल काम है लेकिन विभिन्न विद्वानों ने इससे संबंधित अपने मत प्रस्तुत किये हैं। समस्त विद्वान एक दूसरे के मत से संतुष्ट तो नहीं होते दिखायी देते हैं लेकिन सभी ने केन्द्र में व्यक्ति को ही रखा है। कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं इस प्रकार है---

जार्ज मिसल ने 'समाज' को उन व्यक्तियों का समूह माना है जो अन्त: क्रिया द्वारा संबंधित है।4

मनुष्य समाज में रहते हुए उसकी संस्कृति तथा संस्कार को पूरी तरह से सुरक्षित रखता है जिसमें कोई खास परिवर्तन नहीं आने पाता और यदि कोई परिवर्तन होता भी है तो वह भी युगों के बाद। समाज शास्त्रियों ने ऐसे ही समाज के शास्त्र का निरूपण किया है जिसमें लोग अर्थात पुरूष स्त्री तथा बच्चे रहते हों और वे उस समाज के उन तमाम बन्धनों को स्वीकार करते हों जो समाज द्वारा निर्मित हैं चाहे वे सामाजिक हों या सांस्कृतिक। दोनों ही समाज के अभिन्न अंग माने जाते हैं, इसलिए इन दोनों को जीवन्त बनाये रखना सामाजिकों का दायित्व बनता है, इसी तरफ संकेत करते हुए श्री एफ. एच. हॉकिंग ने लिखा है कि--''समाजशास्त्रियों ने पुरूषों स्त्रियों और बच्चों के स्थायी समूह को समाज कहा है, जो सांस्कृतिक स्तर पर स्व-प्रजाति के सातत्य को बनाये रखने और उसका परिपोषण करने मे समर्थ होता है।''5

मनुस्मृति में 'समाज' शव्द को प्रदर्शनी का द्योतक माना जाता हैं मनु लिखते हैं कि---

सभा प्रपापूशाला वेशमद्यान्न विक्रिया:।
चतुष्पथाश्चैत्यवक्षा: समाजा: प्रेक्षणानि च।।6

फेयरचाइल्ड समाज को व्यक्तियों का ऐसा समूह मानते हैं जिसमें व्यक्ति अपने बहुत से प्रमुख हितों, जिसमें अनिवार्य रूप से स्वयं की रक्षा या भरण-पोषण तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करना सम्मिलित है, को पूरा करने के लिए सहयोग करते हैं।7

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर ने समाज को इस प्रकार से व्याख्यायित किया है--मैकाइवर समाज को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित करते हैं जहाँ पर विविध प्रकार के चलन , विविध प्रकार के निर्देशों का स्वामित्व , परस्पर सहयोग की स्वतन्त्रता , मानव आचरण के नियमन का संगठन और समुदायों की सतत परिवर्तनशील प्रक्रिया कार्यरत रहती है।8

सामाजिक जीवन का समाज से तथा समाज के संबंधों से बहुत घनिष्ठ संबंध है। अधिकांशत: ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज के एक दूसरे लोगों से अन्त: प्रक्रिया करता रहता है। समाज में रहने के लिए व्यक्तियों के बीच एक प्रतिमान निश्चित होता है इन प्रतिमानों का स्वरूप विभिन्न समाज में भिन्न-भिन्न होता है, उदाहरणार्थ नमस्कार या अभिवादन आदि का करना सामाजिक जीवन का आधारभूत तत्व माना जाता है। और इन्हीं आधार भूत तत्वों के माध्यम से व्यक्ति अपने-अपने कार्यो को पूर्ण करके स्वयं का जीवन यापन करता है। यदि हम पूर्ण रूपेण समाज तथा उसके कार्यो पर विचार करें तो पता चलता है कि सामाजिक जीवन सामाजिक संबंधों के विकसित प्रतिमानों पर ही आधारित होता है इसी संबंध में मैकाइबर तथा पेज भी अपना मत व्यक्त करते हैं--"समाजशास्त्र सामाजिक संबंध के विषय में है। संबंधों के जाल को हम समाज कहते हैं।"9

समाज और उसके साहित्य की हम जब भी चर्चा करते हैं तो संस्कृत साहित्य को भी नजरअन्दाज नहीं कर सकते हैं। श्रीमद्‌भागवत् पुराण के दशम् स्कन्ध के 44वें तथा 60वें अध्याय में समाज का प्रयोग सभा के साथ-साथ संबंध सूचक अर्थ में भी किया गया है यथा--

''धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत।
यत्रा धर्मा स मुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित।।10

तेषां विभो समुचितो भवत: समाज:।
पुंस: स्त्रियाश्च रतयो: सुखदु:खिनोर्न।।11

स्मृतिकार समाज और व्यक्ति के जीवन में संगठन, संतुलन तथा सामंजस्य की अपेक्षा वर्णाश्रम व्यवस्था को अधिक स्वीकार किया है। वेदों में ऐसा प्राप्त होता है कि सृष्टि विराट पुरूष के अंगों से हुई है। अब यदि विराट पुरूष को समाज मान लिया जाय तो अन्य सभी समाज के अंग हो जायेंगे। स्मृतिकार पूरे समाज को जलराशि के रूप में स्वीकार करके पुरूष के चार अंगों का निरूपण करते हुए कहा है कि--

''जल जब किसी छोटे पात्र में सीमित होता है तब उसे शूद्र कहा जाता है। जल जब एक बड़े पात्र जैसे कूप में सीमित होता है तब उसे वैश्य कहा जाता है। जल जब अधिक बड़े क्षेत्र जैसे झील आदि में सीमित होता है तब उसे क्षत्रिय कहा जाता है तथा सतत प्रवाहमान सरितजल को ब्राह्मण की संज्ञा से अभिहित किया गया है।''12

वेदों में भी पुरूष के चार अंग बताये गये है ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य तथा शूद्र--

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहुराजन्यः कृतः।
उरु तस्य यद वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत।।"13

समाज का मुख ब्राह्मण, भुजाएं क्षत्रिय, उदर वैश्य तथा चरण को शूद्र माना जाता है। ये सभी आधार तुच्छता के आधार पर नहीं बल्कि उनकी योग्यता तथा क्षमता के आधार पर किया गया था लेकिन आज भारतीय समाज में जो वर्ण व्यवस्था प्रचलित है वह जन्म पर आधारित होती है। मनु का भी कथन है कि "अनादिकाल से चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था स्थापित रही है ।14 चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति परिमपिता की अपनी विराट देह से हुई। विश्व की सम्पन्नता के लिए चातुर्वर्ण्य की रचना विश्वात्मा ने की। ब्राह्मण को अपने मुख, क्षत्रिय को अपने हाथों, वैश्य को अपनी जंघाओं तथा शूद्र की अपने पदों से रचना की।"15

समाज की प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होती है और प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन की प्रकिया निरन्तर अबाध गति से गतिमान रहती है। यह परिवर्तन पदार्थ का भी हो सकता है और विभिन्न प्राणियों का भी। इस प्रकार विकास की यह प्रकिया केवल जीवजगत तक सीमित न रहकर सृष्टि की सभी वस्तुओं में दिखायी देती है और इस विकास का एक स्तर दूसरे स्तर के साथ संबंध भी होता है जिसकी एक निश्चित दिशा होती है।

समाजशास्त्रियों का भी ऐसा मानना है कि मनुष्य का आगमन इस पृथ्वी पर जब हुआ होगा उस समय न तो कोई समाज रहा होगा और न ही कोई संगठन। आदि मानव काल से लेकर आज तक समाज में कई प्रकार के बदलाव आये और यही बदलाव की भावना लोगों के बीच परस्पर सहयोग की भावना के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे परिवारों के संयुक्त रूप ने समाज का रूप धारण कर लिया होगां भारतीय

सामाजिक संरचना में वर्णाश्रम व्यवस्था, सामाजिक संगठन, परिवार,संस्कार, नारी का स्थान, व्यक्ति और समाज आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

वर्णाश्रम व्यवस्था

इसके अन्तर्गत वर्णो का जन्म और उनके कार्यो का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र वर्ण मुख्य रूप से समाज के अंग माने जाते हैं। जिसमें ब्राह्मणों का कार्य, पठन-पाठन, क्षत्रिय का कार्य समस्त वर्णो की रक्षा करना, वैश्य का कार्य व्यापार करना तथा शूद्र का कार्य सभी वर्णो की सेवा करना माना जाता रहा है।

धर्मशास्त्र में ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि आश्रम शब्द 'श्रम' से बना हुआ है अर्थात एक ऐसा जीवन स्तर जिसमें व्यक्ति बहुत श्रम करता है।16 आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य आश्रम (जन्म से 25 वर्ष तक) गृहस्थाश्रम (25 से 50 वर्ष तक) वानप्रस्थाश्रम (50 से 75 तक) सन्यास आश्रम (75 से मृत्यु पर्यन्त) इत्यादि का समावेश होता है। आश्रम व्यवस्था के विषय में डा. सोमनाथ शुक्ल का मत है कि--''स्मृतिकारों ने व्यक्ति के समाज सापेक्ष संस्कारित व्यक्तितत्व के विकास की अनन्त संभावनाओं को आश्रम व्यवस्था द्वारा प्रकट चला आ रहा है। वैदिककालीन समाज में एक नारी प्रथा का प्रचलन था, समाज में उनका सम्मान था। वेदादि पढ़ने का अधिकार था लेकिन मध्यकाल तक आते-आते नारियों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी उन्हें केवल उपभोग की वस्तु मात्र तक समझा जाने लगा और एक चहरदीवारी तक ही सीमित रखा जाने लगा। लेकिन आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही इनकी दशा में सुधार देखने को मिलने लगा, साहित्यकारों, लेखकों, कवियों यहाँ तक कि सरकार ने भी इनके उत्थान

का बीड़ा उठाया और आज इन्हें पुरुषों के बराबर स्थान मिल चुका है।

इस प्रकार समाज शास्त्रियों तथा संस्कृत के आचार्यो ने समाज शास्त्र को अपने-अपने नजरिये से देखा है और अपने विचार व्यक्त किये हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी सामज शास्त्र पर दृष्टिपात किया है। सभी विद्वान इस बात को नजरन्दाज नहीं कर पाते कि लोगों के एक ऐसे समूह या समुदाय को समाज कहते हैं, जिसमें स्त्री-पुरूष तथा बच्चे आदि सभी रहते हैं। सबके अपने-अपने परिवार होतें हैं वे सभी एक मत से समाज के उन सारे बंधनों को स्वीकार करते हैं जिससे एक सुन्दर एवं सुगठित समाज का निर्माण होता है और उनकी संस्कृति भी सुरक्षित रहती है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो समाज के समस्त स्वरूपों का विवेचन हमें ऐतिहासिक नाटकों में भी देखने को मिलता है। चाहे वह संसकृत के हों या हिन्दी के। तत्कालीन ऐतिहासिक नाटकों में भी उपर्युक्त स्वरूप पूर्णरूपेण दिखायी देता है जिनकी चर्चा आगे कमशः की जायेगी।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति :---

प्रस्तुत अध्याय संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में वर्णित समाज का है, जिसके अन्तर्गत समाज के उन तमाम पहलुओं को उजागर किया जाएगा जिनके आधार पर समाज टिका हुआ है। इसके पूर्व समाज का अर्थ एवं उसकी परिभाषा का यथातथ्य वर्णन किया गया है। अब हम यहाँ सर्वप्रथम संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में वर्णित समाज को निम्नलिखित आधारों पर विभाजित करके उसका मूल्यांकन करेंगे।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक-स्थिति :---

१- वर्ण एवं वर्णाश्रम व्यवस्था
२- धार्मिक स्थिति
३- नारी की स्थिति
४- शिक्षा
५- संस्कार

१- वर्ण एवं वर्णाश्रम व्यवस्था :---

स्वप्नवासवदत्तम् के समय भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था सम्पूर्ण रूप से विद्यमान थी। इस व्यवस्था के साथ-साथ जाति प्रथा का भी महत्व था। विद्वानों के मतानुसार तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों का सम्मान होता था। वर्ण और आश्रम दोनों व्यवस्थाओं का उल्लेख भास के नाटक में प्राप्त होता है। आश्रमों के लिए पृथक-पृथक स्थान होते थे। तपोवन में वान प्रस्थी तथा सन्यासी रहते थे। ब्रह्मचारी गुरू के साथ रहकर आश्रम मे विद्याध्ययन करते थे। आश्रम में अध्ययन पूर्ण करके ही ब्रह्मचारी लौटता था। १ अध्ययन की

समाप्ति पर गुरू दक्षिणा भी दी जाती थी। २ इस व्यवस्था के बावजूद भास के समय में बौद्ध अपने उत्कर्ष पर थे। आश्रमों में, तपोवनों में वानप्रस्थी और सन्यासी निवास करते थे। तपोवन बहुत ही शान्त, ग्राम्य वातावरण से दूर तथा नगर परिभव से उन्मुक्त होते थे। ३ राजाओं का धर्म तपोवन की रक्षा करना होता था। वे धर्म पीड़ा से बचते थे। ४ गृहस्थ भी अपने धर्मानुसार आचरण करते थे। युवतियों को आश्रमों में रहना नियम विरूद्ध माना जाता था। ५ सन्यास आश्रम में कुछ लोग वृत्ति के उद्देश्य से भी इस वेश को धारण करते थे। ६

प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक के प्रथम अंक और द्वितीय अंक के अध्ययन से वर्णव्यवस्था के संबंध से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वर्णव्यवस्था का विधान था। यह वर्ण-व्यवस्था किंचित मात्र होती हुई जातिप्रथा के रूप में अस्तित्व प्राप्त कर चुकी थी। समाज में ब्राह्मणों का सम्मान था। ब्राह्मण धार्मिक कार्य तथा शान्ति निमित्तिक भोजन भी करते थे। ७ किन्तु भास के समय में बौद्धों का उत्कर्ष था अतः ब्राह्मणों को हेय माना जाता था। ८ तत्कालीन समाज में आश्रम व्यवस्था के रूप में वानप्रस्थ और सन्यासियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

अतः तत्कालीन समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था एवं जाति प्रथा समुचित रूप से व्याप्त थी तथा समाज इनको आदर के साथ स्वीकार भी करता था। गृहस्थ अपने धर्मानुकूल आचरण करते थे। तपोवनों में सबके लिए पृथक - पृथक व्यवस्था थी। उस समय के समाज में साधू के दो प्रकार होते थे - सन्यासी और परिव्राजक। सन्यासी स्थायी रूप से किसी एक जगह पर निवास करते थे जबकि परिव्राजक भ्रमण करते रहते थे। (परिव्यज्य सर्वम् परितः व्रजति इतिपरिव्राजक :) परिव्राजकों की वेशभूषा निश्चित होती थी। यौगन्धरायण परिव्राजक ही था। प्रस्तुत नाटक में भास ने तपोवनाश्रमों का सुन्दर दृश्य अत्यन्त प्राञ्जल रूप में वर्णित किया है। भास ने तपोवन में पीड़ा पहुचाने वालों के विषय में कहा है कि जो तपोवन को पीड़ा पहुँचाते हैं वे अधर्मी और देशद्रोही होते हैं। अतः सुस्पष्ट है कि राजाओं के द्वारा इन

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY University of Baroda

आश्रमों की सुरक्षा एवं आदर्श की रक्षा हेतु भी प्रयास किया जाता था। उस समय समाज में नैतिकता और आदर्श का अधिक महत्व था, इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था में धर्म को प्रमुख अंग माना जाता था और महाकवि भास इस व्यवस्था के पक्षपाती भी प्रतीत होते थे।

मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने अपने-अपने स्मृति ग्रन्थों में जिस वर्णव्यवस्था की बात प्राचीन वैदिक काल में की थीं उसका पूर्ण निर्वाह संस्कृत के ऐति. नाटककारों ने भी किया है। तत्कालीन समाज में जातिप्रथा का प्रचलन था। समाज चार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य तथा शूद्र। उच्चजाति के लोग अपनी जाति का गर्व करते थे। वैदिक काल में यह वर्ण-व्यवस्था कर्मगत मानी जाती थी परन्तु बादमें यह जातिगत व्यवस्था के रूप में आधिक प्रचलित हो गयी। वर्णकर्म की दृष्टि से तत्कालीन समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि माना जाता था। अध्ययन, अध्यापन, यजन याजन, दान और प्रतिग्रह ब्राह्मण के षटकर्म माने जाते थे। विद्या ब्राह्मण का भूषण ९ और विद्याध्ययन उसका परम कर्तव्य समझा जाता था। यज्ञोपवीत ब्राह्मण का महदुपकरण था। १० गुणों से युक्त ब्राह्मण ही किसी परिवार को अनुग्रहीत कर सकता था। तत्कालीन समाज में ब्राह्मण की अपेक्षाकृत विद्वान ब्राह्मण को दान देना अधिक पुण्यकर माना जाता था। ११ ब्राह्मण केवल वर्णों में ही नहीं संपूर्ण पृथ्वी पर पूज्य माना जाता था। १२

व्रत उपवासादि धार्मिक क्रियाओं में ब्राह्मण दक्षिणा का बड़ा महत्व था। कुछ ऐसे भी ब्राह्मण होते थे जो दक्षिणा आदि नहीं भी स्वीकार करते थे। मृच्छकटिकम् में शर्विलिक ऐसा ही चतुर्वेदज्ञ ब्राह्मण का पुत्र है। विशेष परिस्थिति वश ब्राह्मण जीविकोपार्जन हेतु व्यापारादि इतर साधनों को भी स्वीकार कर सकता था। ऐसी स्थिति में ब्राह्मण गोपालन, तथा वाणिज्य वृत्ति भी स्वीकार करके जीविकोपार्जन हेतु, धन आर्जित कर सकता था। यह अनुमति स्मृतिकार मनु ने दी है। १३ ''मृच्छकाटिकम्'' नाटक में ''चारूदत्त'' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है वह ब्राह्मण होते हुए भी व्यापार को जीविका हेतु ग्रहण करता है और वह सार्थवाह कहलाता है। १४

ब्राह्मणों का समाज में आदर होने पर भी उनके दुर्गुणों को नकारा नहीं जाता था गुरूतर अपराध के कारण उन्हें उनका वध तक कर दिया जाता था। १५ तत्युगीन समाज में ब्राह्मण धार्मिक कार्य तथा शान्ति निमित्त भोजन भी किया करते थे ।१६ भास कालीन समाज में बौद्धधर्म अपनी चरम सीमा पर होने के कारण कुछ लोग इन्हें हेय भी मानते थे। १७ किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व या शिक्षादि के प्रारम्भ होने से पूर्व ब्राह्मण की पूजा की जाती थी। १८ ब्राह्मण की मृत्यु का कारण बनना भी महान पाप समझा जाता था। १९ मृच्छकटिकम् नाटक का पात्र शर्विलिक चारूदत्त के घर पर चोरी करने की बात जब मदनिका को बताता है, इस पर मदनिका जब किसी के मारने पीटने की बात पूँछती है तब उसके अन्दर का ब्राह्मण जाग जाता है और वह कहता है- "ब्राह्मण परिस्थितिवश पतित होकर भी अपनी मान मर्यादा की उपेक्षा नहीं करता है। मैने चारूदत्त के घर में न तो किसी को मारा है और न किसी को घायल किया है।" २०

तत्कालीन समाज में ब्राह्मण के बाद दूसरा वर्ण क्षत्रिय का था तैतरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि - "ब्रह्मवै ब्राह्मण : -क्षत्रं राजन्यः।"२१ शुक्राचार्य के शब्दों में क्षत्रिय की परिभाषा इस प्रकार है- "जो प्रजा का रक्षण करने में निपुण हो, शूर और पराक्रमी हो और जो दुष्टों का दमने करने में समर्थ हो वही क्षत्रिय कहलाता है।"२२ क्षत्रिय भी ब्राह्मण के सम्मान ही उच्च माना जाता था। इसी कारण इन शब्दों का प्रयोग क्षत्रियों के लिए भी प्रयोग किया जाता था। २३ जिस प्रकार से ब्राह्मणों के संस्कार किये जाते थे ठीक उसी प्रकार क्षत्रियों में जाति-कर्मादि संस्कार सम्पन्न होते थे।

तत्कालीन समाज में क्षत्रिय वर्ण में स्वतन्त्र गोत्र या जातियाँ हुआ करती थी। क्षत्रिय वर्ण या जाति के लोग सम्पूर्ण देशभर में बिखरे हुए थे। "मुद्रा राक्षस" नाटक में इनके रहने वाले स्थान को जनपद नाम दिया गया है। कुलूत २४ मलय २५ कम्बोज २६ तथा गान्धार २७ आदि कुछ प्रसिद्ध जनपद थे। अन्य ऐतिहासिक नाटकों में भी क्षत्रिय सम्बन्धी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

तीसरा वर्ण वैश्यों का था। नाटकों में इस वर्णके लिए कालेज, श्रेष्ठी, सार्थवाह तथा वणिक आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। जिस प्रकार समाज में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को उच्च स्थान प्राप्त था उसी प्रकार वैश्य को भी उच्च स्थान प्राप्त था। वैश्य लोग देश को समृद्ध बनाने हेतु विभिन्न नगरों में व्यापार करने जाते थे और अपने वैभव का विस्तार करते थे। २८ इनके लिए वणिक या श्रेष्ठिन आदि शब्दों को प्रयोग किया जाता था। वैश्य वर्ण , देश को समृद्ध करने के लिए व्यापार में संलग्न रहते थे तथा इसके लिए वे एक नगर या देश से दूसरे नगर या देश में घूमा करते थे। व्यापार करने का मुख्य उद्देश्य धनोर्जन करना होता था। ''मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य चन्दनदास से उसके व्यापार की समृद्धि के बारे में पूँछता है।''२९ तत्कालीन व्यापारी वस्तुओं का क्रय-विक्रय करके जो धन प्राप्त करते थे उसका उपयोग आमोद-प्रमोद में नही करते थे। प्राप्त धन का उपयोग, सामाजिक कार्यों जैसे भवन इत्यादि बनवाने तथा दूसरों की सेवा में करते थे। विदूषक सार्थवाह पुत्र श्रेष्ठी चारूदत्त के विषय में इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहता है- ''हे आर्यजनों ! जिसने निर्धनों के लिए भवन-निर्माण , बौद्ध भवन, उपवन, देवालय, तालाब, कूप एवं यज्ञ स्तंभों से उज्जयिनी नगरी को विभूषित किया है, वह निर्धन क्षणस्थायी धन के लोभ में पड़कर क्या ऐसा दुष्कर कार्य कर सकता है।'' ३०

तत्कालीन समाज में वैश्य जाति का चरित्र बहुत पवित्र माना जाता था। ३१ लेकिन इनकी साधारण प्रवृत्ति कृपणता थी, वे जन्म से ही बड़े कंजूस होते थे। नाटकों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि समाज में वैश्यों का पूर्ववत स्थान न था। चन्दनदास नाटक में एक वैश्य वर्ण के अन्तर्गत आता है और हमेशा प्राकृत भाषा में बातचीत करता है जबकि संस्कृत नाट्य शास्त्रियों तथा आचार्यों ने वैश्यों को संस्कृत मे बोलने का नियम बनाया है। ३२ तत्युगीन समाज में वैश्य व्यापार के साथ ही साथ वे खेती थी किया करते थे। वसन्त सेना धोखे से शकार की गाड़ी में बैठ जाती है जब उसे यह ज्ञात होता है तब वह कहती है कि -''इस समय मुझे जैसी मंदभागिनी का यहाँ आना असर खेत में पड़े हुए बीज की मुठ्ठी के समान निष्फल हो गया।'' ३३ नौका आदि

से समान दूर-दूर भेजा जाता था। ३४ बैलगाड़ी का उपयोग समान भेजने तथा लोगों को ले जाने के रूप में होता था।

ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य के अतिरिक्त तत्कालीन समाज का चौथा वर्ण भी कार्य कर रहा था वह था शूद्र वर्ण। इस वर्ण का कार्य सभी वर्णों की सेवा करना था। यह वर्ण अन्य वर्णों की अपेक्षा अधम माना जाता था। ३५ तत्युगीन समाज में उपर्युक्त चार वर्णों के अलावा चाण्डाल ३६ अन्त्यज ३७ आदि जातियाँ भी विद्यमान थी। अन्त्यज तथा चाण्डाल जातियों का समाज में स्थान अत्यन्त निम्न कोटि का था। नगर में प्रवेश करने के पूर्व ये जातियाँ जोर-जोर से चिल्लाती थी जिससे समाज के अन्य वर्ण उनके स्पर्श के भय से हट जाय। ३८ मनु के अनुसार चाण्डाल का स्पर्श नहीं करना चाहिए। ३९ वर्ण व्यवस्था की इस लम्बी परम्परा में समय समय पर बदलाव भी आते रहते है चूंकि समय परिवर्तनशील है यह समाज से जुड़ा हुआ है मृच्छकटिकम् काल तक आते-२ समाज में थोड़ा बहुत परिवर्तन भी आया जिसके फलस्वरूप चाण्डालादि जातियाँ कर्म करते हुए भी अपने को चाण्डाल नहीं घोषित करती थी यथा-

''न खलु वयं चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि।'
ये आर्यभवान्ति साधु ते पापास्ते य चाण्डालाः॥'' ४०

इन जातियों के अतिरिक्त अत्यन्त इत्यादि जातियाँ भी कार्य करती हुई देखी जाती थी।

गृहस्थ आश्रम का जीवन व्यतीत करने वाले लोगों की कुछ नैतिक जिम्मेदारी होती थी जिसके लिए आध्यात्मिक शुद्धि हेतु दैनिक कर्म एवं धार्मिक अनुष्ठान करना पड़ता था। इसमें व्रत, उपवास,धर्माचारण, तन मन वचन तथा कर्म से देवार्चन आदि का समावेश होता था। मृच्छकटिकम् में मैत्रेय जब देवपूजा आदि की निन्दा करता तो चारूदत्त कहता है-''हे मित्र! ऐसा मत कहो। तन,मन,वचन तथा बलिकर्म द्वारा गृह देवताओं का पूजन गृहस्थ का नित्य नियम है।'' ४१ सन्यासियों के लिए मूँड-मुड़ाना ही आवश्यक नहीं था नहीं भगवापस्त्र धारण करना बल्कि उन्हें नगर के अपमानों और देषों से

बचने के लिए शान्त आश्रय में निवास करना पड़ता था। ४२ सन्यासियों को मूँड़-मुड़ाने के साथ इन्द्रिय दमन भी आवश्यक था। ४३

वर्ण व्यवस्था के अनुसार ही तत्युगीन समाज में कहीं-२ कुछ नाटककारों ने आश्रम व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए इसे जीवन की सीढ़ी बताया है। संस्कृत के ऐतिहासिक नाटककार भी आश्रम व्यवस्था से वार्चत नहीं रहे। भास रचित ''स्वप्नवासवदत्तम्'' नाटक में आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था ऐसा आलोच्य नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है। ब्रह्मचारी गुरू के साथ आश्रम मे रहकर विद्याध्ययन करता था तथा तपोवन होने के बाद ही ब्रह्मचारी लौटता था। ४४ शिक्षा पूर्ण होने पर गुरू-दक्षिणा देने की भी प्रथा थी। ४५ कुछलोग जीविकोपार्जन तथा वृत्ति के उद्देश्य से भी सन्यासी बन जाया करते थे। ''स्वप्नवासवदत्तम्'' का पात्र यौगन्धरायण कहता है कि -

''काधं नेवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रयत्नः।

धीरा कन्येयं दृष्टधर्म प्रचारा शक्ता चारित्रंरक्षितुं में भगिन्याः॥'' ४६

गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले लोग समय-समय पर अपनी परिस्थिति के अनुरूप दान-पुण्य भी किया करते थे। गृहस्थाश्रम में रहने वाले राजादि परिवार तपोवन में, जहाँ तपस्वी लोग निवास करते है, वहाँ आकर स्वयं दानादि देते थे तथा तपस्वियों द्वारा दान भी लेते थे। दान स्वीकार करने पर वे लोग अपने आप को भाग्यशाली मानते थे। ४७ गृहस्थ सन्यासी समाज में रहकर लोकमर्यादा का पालन करते हुए अपने परिवारके उत्तरदायित्व का निर्वाह करता था। ''मृच्छकटिकम्''नाटक में मैत्रेय जब देव पूजा की निन्दा करता है तो चारूदत्त उससे कहता है - ''हे मित्र! ऐसा मत कहो। तन,मन,बचन,बलिकर्म द्वारा गृहदेवताओं का पूजन गृहस्थ का नियम होता है।''४८ वासवदत्ता नाटक के प्रारम्भ में ही योगन्धरायण सन्यासी वेश में प्रवेश करता है- ''ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण।''४९

संस्कृत के अन्य नाटककारों की तरह विशाखदत्त ने भी अपने नाटक में वर्णव्यवस्था का वर्णन किया है। तत्कालीन समाज में लोग जिस जाति में जन्म लेते थे उस जाति का उल्लेख नाटक में प्राप्त होता है। द्विज, विप्र,

ब्राह्मण, क्षत्रिय , वैश्य एवं शूद्रादि जातियों का वर्णन स्पष्ट रूपेण प्राप्त होता है । ५० ब्राह्मण जाति का आदर उनके गुणों पर अवलंबित होता था अर्थात् अविद्वान की अपेक्षा विद्वान ब्राह्मण समाज में अधिक संमानित होता था। दान आदि क्रियाएँ ऐसे ही ब्राह्मणों को देने में सार्थकता समझी जाती थी। ५१ लेकिन इनकी क्रियाओं से पूर्व उनके गुणों की विशेष परीक्षा की जाती थी। इस संबंध में गौतम आदि शास्त्रकारों ने अल्पज्ञ की अपेक्षा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना है । ब्राह्मणों का समाज में आदर होने पर भी उनके गुणों की अवहेलना नहीं की जाती थी। अपितु गुरूतर अपराध के कारण उनका बध तक कर दिया जाता था। ५२

तत्कालीन ब्राह्मणों का व्यवसाय अध्ययन , अध्यापन था। राज्य के उच्च पद पर नियुक्त चाणक्य राक्षस प्रधानमंत्री है। कुछ ब्राह्मण पारंपरिक मत्री हुआ करते थे। राक्षस इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।५३ ब्राह्मण जीविकोपार्जन हेतु विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगा रहता था। कुछ तो अध्यापन में तत्पर होते थे और कुछ की नियुक्तियाँ राज्य के उच्च पदों पर कर दी जाती थी। नाटक के अध्ययन से पता चलता है कि मंत्री के लिए ब्राह्मण को ही सर्वाधिक श्रेष्ठ समझा जाता था। नाटक में चाणक्य और राक्षस दोनों प्रधानमंत्री हैं। कुछ ब्राह्मण परंपरागत मंत्री हुआ करते थे। जैसा कि राक्षस के विषय में पता चलता है।५४ (पैत्रिकस्तत्वययामात्य मुख्यः)

तत्कालीन समाज में ब्राह्मण के अलावा क्षत्रिय वर्णों का भी अपना स्थान था। इन वणों की स्वतंत्र गोत्र या जातियाँ हुआ करती थी। जैसे - वृष्णी ५५, क्षत्रिय वर्ण तथा वैश्य वर्ण समस्त देश में बिखरे हुएं पाये जाते थे। क्षत्रिय वर्ण की जातियाँ किसी-किसी जनपद में तो इतनी ज्यादा पायी जाती थी कि उनके गोत्र या जाति के कारण ही जनपद का नाम रख दिया जाता था। नाटककार ने नाटक में जनपदों के आधार पर जाति का उल्लेख किया है। यथा- कम्बोज के रहने वाले कम्बोज , कुलूत के रहने वाले कौलूत तथा गांधार के रहने वाले गांधार। इनके राजा भी क्षत्रिय वंश के ही हुआ करते थे। ५६ क्षत्रिय राज्याश्रयी हुआ करते थे , लेकिन वैश्य व्यावसायिक । वैश्य की

साधारण कृपणता अवश्य थी लेकिन उनका चरित्र पवित्र माना जाता था। ५७ वैश्यों का समाज में श्रेष्ठ स्थान न था। वैश्य वर्ण के लिए वणिक या श्रेष्ठिन ५८ शब्द का प्रयोग किया जाता था। इस वर्ग का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन करना होता था। शायद इसी कारण नाटक का मुख्य पात्र चाणक्य चंदनदास से उसके व्यापार के समृद्धि के बारे में पूछता है।५९

शूद्र वर्णों के अन्तर्गत अनेक प्रकार की जातियाँ एवं उपजातियाँ थी। जिनका काम समाज के सभी उच्चतर वर्णों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। तत्कालीन भारत में शूद्रों के अलावा अन्य जातियाँ भी अपना शासन स्थापित कर चुकी थी। विशाखदत्त के समय पर ये जातियाँ हिन्दू समाज के काफी निकट आने लगी थी। समाज में शूद्रों के अलावा शक, यवन, हूण, कौलूत, किरात, कम्बोज आदि जातियाँ मुख्य रूप से थी। मनु के अनुसार इनमें से अधिकांश जातियाँ शूद्र थी। ६०

तत्युगीन समाज में वर्ण-व्यवस्था के समान ही आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था। नाटककार ने ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले बालब्रह्मचारियों ६१ का उल्लेख किया है। गृहस्थाश्रम सनातन तथा अबाध गति से चलने वाली धारा है। वानप्रस्थ के अन्तर्गत रहने वाले तपस्वी कहलाये।६२ लोग स्वार्थसिद्ध के लिए तपोवन का सहारा लेते थे। ६३ सन्यासियों का कोई खास उल्लेख नहीं मिलता है। शायद महात्मा ६४ शब्द सन्यासियों का ही द्योतक माना जाता था।

कालिदास के नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचलन तत्कालीन समाज में पूर्णरूपेण विद्यमान था। समाज में जातिगत व्यवस्थाएँ परंपरागत थी। विद्वान ब्राह्मणों का समाज में आदर था। ब्राह्मणों को नित्यप्रति महीनों तक दक्षिणा देने का विधान भी नाटक में प्राप्त होता है। मालविकाग्निमित्रम नाटक में ब्राह्मण का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। किसी भी शुभ कार्यों का प्रारंभ करने से पूर्व या शिक्षादि के प्रारम्भ में ब्राह्मण की पूजा की जाती थी। जिस समय नाट्याचार्य गणदास राजा के सामने अपनी नृत्य-विद्या की परीक्षा में सफ़ल होता है उस समय वह कहता है कि- ''प्रथमतः

परीक्षा देने के पहले ब्राह्मण पूजा की जाती थी वह तो भूल ही गई।'' ६५ गणदास ब्राह्मण की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए कहता है कि यह मेरा प्रथम प्रदर्शन नहीं है, नही तो मैं ब्राह्मण की पूजा अवश्य करता। ब्राह्मण की मृत्यु का निमित्त बनना महान पाप समझा जाता था। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जातियों का संकेत मात्र नाटक में प्राप्त होता है। यत्र तत्र ब्राह्मण के अशिक्षित होने का भी संकेत मिलता है।

२- धार्मिक स्थिति :---

महाकवि भास के नाटकों में तत्कालीन समाज द्वारा धर्म की प्रबलता पूर्ण रूप से स्वीकार की जाती थी ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। देवता के रूप में यक्षिणी इत्यादि की पूजा होती थी। विवेच्य नाटक में उसे ''भगवती'' शब्दसे अभिहित किया है। सभी जाति के लोग अपने कुलोचित देवताओं का पूजन व्रत, उपवास और दान धर्म इत्यादि किया करते थे। धर्म में अनन्य निष्ठा, तत्व शास्त्र, कर्म-काण्ड एवं हिन्दू धर्म का सांकेतिक वर्णन भास के धार्मिक ज्ञान का परिचायक है।

उक्त नाटक कालीन समाज में हिन्दू धर्म, जैन ओर बौद्ध धर्म का संकेत प्राप्त होता था। विवेच्य नाटक के द्वितीय अंक में देवताओं के मन्दिर में देवकुल पीठ का वर्णन प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज में पंचदेवोपासना का संकेत प्राप्त होता है क्योंकि देवताओं में यक्षिणी के अतिरिक्त कार्तिकेय,१ लोहित, कात्यायिनी और शिवादि देवताओं का उल्लेख प्राप्त होता है। २ तन्त्र शास्त्र, कर्मकांड, और हिन्दू धर्म दर्शन का संकेत भी भास के नाटकों में प्राप्त होता है, श्रमणों का उल्लेख भी मिलता है, श्रमणों को उपासक भी कहा गया है। इनकी दृष्टि में ब्राह्मण होना पाप माना जाता था। ३ उस समय के समाज में ब्राह्मण बौद्ध की धार्मिक कटुता का भी संकेत प्राप्त होता है। श्रमण की अशिष्टता का भी तथा उसके आचार-विचार का भी उल्लेख नाटक में प्राप्त होता है।

अतः ई.पू. चतुर्थ से पंचम शताब्दी के प्रारंभ तक तत्कालीन समाज में

हिन्दू धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म की प्रबलता थी तथापि हिन्दू धर्म का ही बाहुल्य एवं प्रचार-प्रसार अधिक था। स्वप्नवासवदत्तम् की अपेक्षा प्रतिज्ञा में धर्म का विवेचन पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है।

धर्म और समाज दोनों एक सिक्के के दो पहलू है। जहाँ धर्म होगा वहाँ समाज होगा और जहाँ समाज होगा वहाँ धर्म अवश्य होगा। यह दूसरी बात है कि हर देश, हर प्रान्त का अपना अलग-अलग धर्म होता है। संस्कृत कालीन समाज में धर्म का प्रचार-प्रसार पूर्णरूपेण विघमान था। तत्कालीन समाज में वैदिक और बौद्धिक दोनों धर्मों का बोलबाला था। साथ ही साथ कहीं कहीं पर जैन धर्म का भी अस्तित्व दिखाई देता था। लेकिन इन सभी धर्मों में वैदिक धर्म उन्नति के शिखर पर था, अन्य धर्मों का धीरे धीरे हास होना प्रारम्भ हो गया था। सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इत्यादि क्षेत्रों में शास्त्र-सम्मत निर्णय ही स्वीकार होता था। ''प्रतिज्ञायौगन्धरायणं'', नाटक में भारतरोहक युद्ध में जीते हुए शत्रु के विषय में शास्त्र-सम्मत विधान पूछता है। ४ विवेच्य युग में ब्राह्मण धर्म,शैक्वधर्म, वैष्णव धर्म आदि धर्मों का प्रचार प्रसार दिखायी देता था।

तत्कालीन समाज में धर्म और धार्मिक विचारप्रणालियों का मूलाधार देवता ही माना जाता था। लोग देवता की शक्ति में पूर्ण रूपेण विश्वास करते हुए देखे जाते हैं। बहुदेववाद की प्रथा प्रचलित थी लोगों का विश्वास किसी एक देवी-देवता पर न होकर विभिन्न देवी देवताओं पर थी। आलोच्य नाटकों में जिन देवी देवताओं का विवटरण प्राप्त होता है वे इस प्रकार है- इन्द्र ५, सूर्य ६, विष्णु ७, ब्रह्मा ८, कुबेर ९, स्कन्द १०, नारद ११, नगरदेवता १२, गृह-देवता १३, गौरी १४, मातृदेवियाँ। १५

इन्द्र को देवताओं का अधीश्वर माना जाता था। १६ मेघ पर इन्द्र का आधिपत्य था। इन्द्र की आज्ञा से ही मेघ वर्षा करते थे। १७ शिव के लिए हस्तिचर्म-धारी १८, अर्धनारीश्वर १९ सर्पो, २० से परिवेष्ठित तथा योग समाधि में लीन २१ माना गया हैं।

''मृच्छकटिकम्''कालीन समाज में वैदिकयज्ञों, पूजा-पाठ,पशु-बलि

तथा तर्पण आदि क्रियाए समाज में प्रचलित थी तथा लोगों का इन क्रियाओं पर अटल विश्वास भी था। २२ तत्कालीन समाज के लाग अन्ध विश्वासों पर भी विश्वास किया करते थे। भविष्यवाणी, आँखका फड़कना कौवे का बोलना, साँप को देखना आदि चीजें अशुभ मानी जाती थी। २३ साथ ही साथ ज्योतिषशास्त्र के अनुसार पुनर्जन्म, भाग्य आदि पर भी लोगों का पूर्णरूपेण विश्वास था। महाकवि कालिदास के "मालनिकग्निमित्रं" में, नाटक का नायक अग्निमित्र जो कि राजा भी है वह देवी को देखते हुए कहता है कि- "परिव्राजिका के वेश में सन्निहित कौशिकी के साथ मंगल-अलंकारों से युक्त, आध्यात्मविद्या से युक्त वेदत्रयी के समान प्रतीत हो रही है।"२४ भास के नाटकों में भी धर्म की प्रबलता देखने को मिलती है। भास कालीन नाटकों में भी तत्युगीन समाज पूर्णरूपेण मुखरित होता है। उस समय पंचदेवोपासना आदि का वर्णन प्राप्त होता है। क्योंकि देवताओं में यक्षिणी के अलावा कार्तिकेय २५, लोहित, कात्यायिनी और शिवादि देवताओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणं नाटक के तीसरे अंक के प्रारम्भ में ही शिवादि देवताओं के देवालयों का वर्णन प्राप्त होता है। याक्षिणी की पूजा करना तत्युगीन समाज में देवकार्य समझा जाता था। कालष्टमी के दिन खास करके कुमारी लड़कियाँ यक्षिणी की पूजा करती थी। विदूषक स्वयं राजा यौगन्धरायण को बतता है कि कुमारी वासवदत्ता कारागार के द्वार के सामने भगवती यक्षिणी की पूजा करने गयी है स्वयं विदूषकके शब्दों में - "जो कालाष्टमी बीत गई उसी दिन राजकुमारी वासवदत्ता जिसके साथ धात्री थी, कन्या दर्शन को निर्दोष समझकर-जिसका परदा हटा दिया गया था ऐसी पालकी में बैठकर, नाली के जल के प्रवाह के रूक जाने से दुर्गम राजमार्ग को छोड़कर उसके कारागार के द्वार के आगे जो भगवती "यक्षिणी" का स्थान है उसमें देवता की पूजा करने गई है।"२६

तत्कालीन समाज में लोग सिद्धो की भविष्यवाणी पर भी विश्वास करते थे। वत्सदेश के राजा उदयन का मन्त्री, यौगन्धरायण सिद्धों की वाणी पर विश्वास करते हुए, पद्मावती ही राजा उदयन की पत्नी होगी, इसी संबंध में वह कहता है - "पद्मावती महाराज की पत्नी होगी, ऐसा उन सिद्धों राज्यनाश

ने कहा है जिन्होंने उदयन पर आने वाली राज्यनाश रूपी विपत्ति को पहले ही सचेत कर दिया था। उन्ही के विश्वास से हमने यह सब काम किया है क्योंकि सिद्ध पुरूषों के भली प्रकार जाँचे गये वचनों का उल्लघन करके भाग्य भी नहीं चलता।'' २७ लोगकर्मवाद तथा पुनर्जन्म पर भी विश्वास करते थे। जीव को मरणोपरान्त उसके द्वारा किये गयें कर्म के अनुसार गति प्राप्त होती है ऐसा लोगों मे एक धारणा सी बन गयी थी जिसके कारण लोग सत्कर्म में प्रवृत्त होते थे। मृच्छकटिकम् में चेट अपने दासत्व का कारण पूर्व जन्म का पाप ही मानता है। इसी कारण वह इस जन्म में शकार के बार बार कहने पर भी वसन्तसेना वध-रूप दुष्कर्म नहीं करता है। २८ लोग परलोक को कोई अलौकिक वस्तु न मानकर केवल पाप-पुण्य का परिणाम मानते थे। २९

तत्कालीन समाज में व्रत उपवासादि किया करते थे व्रत के दिन लोग ब्राह्मण को निमन्त्रित करते थे तथा उसे दक्षिणा भी देते थे। लोग देवार्चन, देव-पूजन तथा देव-बलि आदि गृहस्थ में रहकर भी नित्य प्रति करते थे। तन-मन एवं वचन से ईष्ट देवता की पूजा पूर्ण भक्ति से की जाती थी। ३०

प्रातः सन्ध्या वन्दन तथा धयानादि भी तत्कालीन आर्यो की नित्य क्रियाएं थी। ''मृच्छकटिकम्'' नाटक में चारूदत्त सन्ध्या बन्दन ३१ और गायत्री मन्त्रों के जप ३२ इत्यादि को दैनिक क्रिया का अनिवार्य अंग मानता है। तत्कालीन समाज लोगों में अन्ध विश्वास का प्रचलन था। लोग सिद्धों की भविष्य वाणी, आँख फड़कना, कौवे का बोलना, साँप का देखना आदि पर पूर्ण विश्वास करते थे तथा इसे अपशकुन मानते थे। ३३

समाज पूर्णरूपेण भाग्यवादी भी था, कर्म पर लोग विश्वास करते थे। जिस समय वासवदत्ता के विवाह का प्रश्न सामने आता हैं उस समय राजा वादरायण बहुत चिन्तित मुद्रामें कच्चुकी से कहते है कि- ''पिता के प्रयत्न से कन्या को सर्वगुण सम्पन्न वर रूप सम्पत्ति तो मिल सकती है। परन्तु शेष बातें तो भाग्य के अधीन होती हैं क्योंकि पहले अच्छी तरह विचार कर पीछे किया गया कार्य निष्फल नहीं होता।'' ३४

३- नारी की स्थिति :---

नारी की कर्मभूमि गृह और परिवार है । भास ने इसके लिए "कुटुम्बिनी"१ शब्द का प्रयोग किया है । वह अपने कर्तव्य पालन एवं शुद्धाचरण से पितृकुल एवं पतिकुल दोनों वंशों को उज्जवल करती थी। स्वप्नवासवदत्तं नाटक में महारानी वासवदत्ता अपने पति के उत्कर्ष के लिए समस्त राज भोग का त्यागकर प्रच्छन्न वेश में रहती है और पद्मावती के साथ अपने पति का विवाह कराने में सहायक सिद्ध होती है। २ भास के समय में समाज में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, स्वप्नवासवदत्तम् के छठे अंक के श्लोक संख्या ३-४ में स्त्रियों द्वारा समान रूप से कार्यों में राय देना, समान आसन पर बैठना स्त्रियों के सम्मान का पुष्ट प्रमाण है । पति का सम्मान एवं स्नेह प्राप्ति ही पतिव्रता नारी का चरम ध्येय था । भ्रातृस्नेह अधिकारिणी नारी मर जाने पर भी अजर-अमर मानी जाती थी। - "धन्या सा स्त्री यां दग्धाव्यदग्धा।"३ भास के समय में विधवा स्त्रियां तो पति के साथ सती हो जाती थी अथवा पति के मृत्यु के पश्चात तपस्विनी सम जीवन व्यतीत करती थी। मांगलिक कार्यों में विधवा उपस्थिति मांगलिक नही मानी जाती थी । विवाहादि अवसरों पर सौभाग्यवती स्त्रियां ही समस्त मांगलिक कृत्य सम्पन्न करती थी।४

विवाहित स्त्रियों में पर्दा प्रथा का भी प्रचलन था। विंटरनेस ने भास के "यवनिका" शब्द का अर्थ कारपेट माना है, पर्दा नही।५ स्त्रियों के चरित्र रक्षा पर विशेष बल दिया जाता था।६ स्वयं स्त्रियाँ भी पर-पुरूष संकीर्तन एवं दर्शन को दोष मानती थी।७ स्त्रियों का सर्वविध दायित्व पुरूष पर था, पुरूष स्त्रियों के दायित्त्व को भार स्वरूप मानता था। "श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां काल क्रमेण पुनरागतदार भारः ॥" ८ स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। शिक्षा के साथ-साथ उन्हें गाने बजाने में तथा चित्रकला एवं माला गूंथने आदि ललित कलाओं में भी निपुण किया जाता था। स्त्रियों की रूचि उदक क्रीडा में भी होती थी।९

इस प्रकार तत्कालीन समाज में स्त्रियों के विविध रूपों का समाज में स्थान था। दायित्व और विविध प्रथाओं में उनकी महत्ता का उल्लेख प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज में नागरिकों को समाज में सम्मान प्राप्त था। प्रदा प्रथा का प्रचलन था। बहुपत्नीत्व की प्रथा समाज में प्रचलित थी समाज में विधवाओं का कोई स्थान नहीं था अपितु शुभ कार्य में उनकी उपस्थिति वर्जित थी। विवाहादि शुभ अवसरों पर सौभाग्यवती स्त्रियाँ ही सम्मिलित होती थी। भास के युग में नारियाँ शिक्षित होती थी, इनकी शिक्षा पुरूषों के समान आवश्यक थी। नाटक में सन्तान की शिक्षा का प्रश्न जब आता है तो महासेन कहता है मैंने अपनी कन्या वासवदत्ता के लिए संगीत-शिक्षा का प्रबन्ध किया है। प्रतिज्ञा यौगंधरायण नाटक में वीणा-वादन की आचार्या उत्तरा नामक वैतालिका का कथन आया है- ''उत्तरायां वैललिकयाः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयाम् गतासीत।'' १० परिवार की विकास की दृष्टि से राजा कन्याओं की शिक्षा का भी पूरा प्रबन्ध करता था। ११

मृच्छकटिकम कालीन समाज में नारी की प्रमुखतः दो श्रेणियाँ थी (१) प्रकाशनारी अथवा गणिका और (२) अप्रकाश नारी अथवा कुल वधू। तीसरी एक और श्रेणी की नारी उस समाज में थी जो भुजिष्या कहलाती थी, वे दासी होती थी, ऐसी नारियाँ अपनी मुक्ति का मूल्य चुकाकर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती थी। मदनिका ऐसी ही नारी थी जिसे वसन्तसेना ने दासता से मुक्त कर दिया और ब्राह्मण शर्विलक ने अपनी ''वधू''बना लिया। १२ तत्कालीन समाज में गणिकाएं नृत्य आदि कलाओं में निपुण होती थी, ये स्त्रियाँ बाजार की वस्तु के समान थी, जो चाहे इन्हें धन देकर खरीद सकता था। १३ (पस्पार्थस्य सा कान्ता धनहार्यो क्षसौ जनः) ऐसी स्त्रियाँ धन प्राप्ति के लिए ही पुरूषों को विश्वास दिलाती थी और उन पर विश्वास नहीं करती थी। १४ ये अत्यन्त अपवित्र और निम्न मानी जाती थी। गणिका अपने इच्छित पुरूष से विवाह करके ''कुलवधू'' के वन्दनीय पद को प्राप्त कर सकती थी। १५ कभी-कभी राजा भी उसके सदगुणों से प्रभावित होकर उसे ''वधू'' अभिधा से सम्मानित करता था। वसन्तसेना राजा द्वारा ''वधू''शब्द से सम्मानित होकर

चारूदत्त की पत्नी बन जाती है । १६

कुलवधू अन्तःपुर में निवास करती थी । विशिष्ट अवसरों पर बाहर निकलते समय अपने मुँह पर घूँघट कर लेती थी । आर्थिक दृष्टि से वे पति पर आश्रित होती थीं । १७ कुलवधू अपने पति की मृत्यु के पश्चात आग में जलकर मर जाना पसन्द करती थी । धूता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । धूता अपने पति चारूदत्त की मृत्यु का अशुभ समाचार पाकर चिता की ओर आगे बढ़ती हुई कहती है-"मुझे छोड़ दो, मैं आर्य-पुत्र के मरणरूप अमंगल को सुनने से डरती हूँ ।"१८ धूता जैसी नारी का सामाजिक दृष्टि से बहुत महत्व था इसलिए प्रकाश नारी (गणिका) दुर्लभ वधू रूप पाने के लिए लालायित रहती थी और अपना सर्वस्व-न्योछाकर कर देती थी ।

मुद्राराक्षस नाटक के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों को किस दृष्टि से देखा जाता था इसका स्पष्टीकरण स्त्री वाचक संबोधनों से हो जाता है यथा-कन्या १९ युवती २० दयिता २१ नववधू २२ नारी २३ स्त्री २४ गृहिणी २५ कुटुम्बिनी २६ माता २७ जननी २८ दूती, कलब, दारा विषकन्या, कुलटा इत्यादि संबोधन तत्कालीन समाज में स्त्रियों के लिए प्रचालित था, तत्युगीन समाज में नारी का स्थान बहुत ऊँचा था । कन्या को अपना जीवन साथी चुनने का पूर्ण अधिकार था । नववधू लजीली एवं संकोचशीली होती थी । २९ नारियोंका कुटुम्ब भरण पोषण में मुख्य भूमिका होती थी उनको यह अधिकार रहता था कि पति के अनुपस्थिति में भी वह ब्राह्मण भोज आदि का आयोजन कर सकती थी । ३०

नाटककार ने कुटुम्बिनी को गुणवती, घरेलू काम काज की व्यवस्थापिका, धर्म अर्थ एवं काम को चलाने वाली तथा घट की मर्यादा एवं टेक कहा है-

गुण वत्युपायनिलये ! स्थिति हेतो ! साधिके त्रिवर्गस्य !

मद् भवन नीति-विधे । कार्यादार्ये द्रुतमुपेहि ।। ३१

तत्युगीन समाज में स्त्रियां पूर्ण स्वतन्त्र थी । पर्दा-प्रथा का अस्तित्व उस समय नहीं था । पाटलि पुत्र में कौमुदी महोत्सव के अवसर पर

बड़े-बड़े नागरिक अपने गृह वैभवों के बल पर अपनी कालकामिनियों के साथ शारदीय पार्वण कर्म का अनुष्ठान करते हुए दिखायी देते हैं । ३२ विनम्रता स्त्रियों का प्रमुख गुण था इसीलिए नववधू को लज्जा से आनतमुखी कहा गया है - ''इषद्द्वारदेशदापिता मुख्या एकया स्त्रिया ॥''३३

स्त्री समाज में वेश्यावृत्ति प्रत्येक काल में देखने को मिलती है । मुद्राराक्षस नाटक में नाटककार ने नाटक में बताया है कि पाटलिपुत्र में धीमी चाल से चलती हुई वैश्याएं दिखाई देती थी । तत्युगीन समाज में सती प्रथा का प्रचलन नहीं था मृत्यु के बाद में भी जीवन व्यतीत करने वाली विघवाओं का वर्णन हमें नाटक के अध्ययन से पता चलता है । ३४ स्त्रियों के विधवा होने में भी कुछ सीमाएं थी । शिशु के अबोध होने पर वे विधवा नहीं होती थी लेकिन विधवा जीवन बहुत कातर ३५ जीवन होता था । कालिदास ने भी विधवा का वर्णन किया है-''नववैधव्य असह्यवेदन'' ३६

वैदिककाल से नारी का समाज में एक उच्च स्थान रहा है मनुने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि जहाँ पर नारियों की पूजा होती है वहाँ पर देवता निवास करते हैं । ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।'' समय परिवर्तन शील है, समाज और साहित्य दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है एक के बिना दूसरा अधूरा रहता है इसलिए समय के साथ-साथ समाज तथा साहित्य में बदलाव आना स्वाभाविक है । यही स्थिति नारी की दशा के बारे में देखने को मिलती है । वैदिककाल से लेकर आज तक के इतिहास को यदि देखा जाय तो इनकी स्थिति में हमेशा उतार-चढ़ाव आता रहा है । ऐतिहासिक नाटककारों ने भी इनकी स्थिति के बारे में तत्कालीन समाज को देखते हुए अपने-अपने नजरिये से चित्रित करना चाहा है । तत्कालीन समाज में नारी की कर्मभूमि गृह एवं परिवार मानी जाती थी । नारी के लिए कुटुम्बनी, कन्या, युवती आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था । मृच्छकटिकम् कालीन समाज में नारी की मुख्यतः दो श्रेणियों प्रमुख थी । प्रकाशनारी अथवा गणिका और अप्रकाश नारी अथवा कुलवधू । इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में नारी की तीसरी श्रेणी भी विद्यमान थी जिसे भुजिष्या कहा जाता था, वे दासी होती थी ऐसी

नारियाँ अपनी मुक्ति का मूल्य चुकाकर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती थी। प्रस्तुत नाटक में "मदनिका" ऐसी ही नारी पात्र है जिसे वसन्तसेना ने दासता से मुक्त कर दिया और ब्राह्मण शर्विलिक ने उसे अपनी 'वधू'बना लिया। ३७ नारी अपने कर्तव्य पालन और शुद्ध आचरण से पितृकुल तथा पतिकुल दोनों वंशों को उज्जवल करती थी। "स्वप्नवासवदत्तम्"नाटक में महारानी वासवदत्ता अपने पति के उत्कर्ष हेतु, समस्त राजभोग तथा विलासिता जीवन का त्यागकरके पच्छन्न वेश में रहना स्वीकार करती है तथा पदमावती के साथ अपने पति का विवाह करने में सहायक सिद्ध होती है। ३८ पति का सम्मान एवं स्नेह प्राप्ति ही पतिव्रता नारी का चरम ध्येय था। वह स्त्री धन्य मानी जाती थी जिसे उसका पति अत्याधिक प्रेम करता था। पति स्नेह की अधिकारिणी नारी मर कर भी अजर-अमर मानी जाती थी। ३९

मुद्राराक्षस नाटक में नाटककार विशाखदत्त ने नारी को कुटुम्बिनी शब्द से संबोधित करते हुए उसे गुणवती घरेलू काम काज में की व्यवस्था में निपुण तथा धर्म, अर्थ काम के साथ-साथ घर की मर्यादा बनाये रखने वाली कहा है-

"गुणवत्युपायनिलये ! स्थिति हेतो ! साधिके ! त्रिवर्गस्य।

मद्-भवन नीति-विधे ! कार्यादार्ये द्रुतमुपेहि ॥"४०

तत्युगीन समाज में स्त्री जब माता बनती थी तो उसका सम्मान और भी बढ़ जाता था, विनम्रता स्त्रियों का सबसे बड़ा गुण माना जाता था इसलिए "नववधू"को आनतमुखी कहा गया है। "इषदद्वारदेश दामिता मुख्या एकया स्त्रिया"४१ से तात्पर्य पूर्ण रक्षित तथा स्मृद्ध पुरूष की स्त्रियों से माना जाता है। लेकिन स्त्रियों की यह स्थिति सर्वव्यापी नहीं थी केवल उच्चकुलों तक ही यह सीमित था। पति की अनुपस्थिति में स्त्रियाँ ब्राह्मण भोज आदि महोत्सवों ४२ का आयोजन कर सकती थी ऐसा करने से पति का अपमान नहीं होता था बल्कि उसका सम्मान माना जाता था।

भास कालीन नाटकों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उस समय समाज में सौभाग्यवती स्त्रियों का महत्व था, समस्त मांगलिक कृत्य सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न होता था। ४३ विधवा स्त्रियां या तो पति के साथ सती हो जाती थी या पति की मृत्यु के पश्चात तपस्विनी के समान जीवन

व्यतीत करती थी। मांगलिक कार्यों में इनका उपास्थित होना अच्छा नहीं माना जाता था। ४४

विशाखदत्त कालीन समाज में भी स्त्रियों के सती होने की प्रथा अप्रचलित देखी जाती है, पति की मृत्य के पश्चात विधवा स्त्री भी अपना जीवन व्यतीत करती हुई देखी जाती हैं। स्त्रियों के विधवा होने की भी कुछ सीमाएं निश्चित थी। जिस स्त्री का पति मर जाता था और उसका बालक अबोध होता था तो उन स्त्रियों को विधवा नहीं माना जाता था। ४५ इतना होने के बावजूद भी विधवा स्त्री "कातर" ४६ जीवन व्यतीत करती थी। जैसाकि कालिदास ने भी कहा है- "नववैधव्य असह्यवेदन" ४७

यह प्रथा "मृच्छकटिकम्" कालीन समाज में भी पूर्ण रूप से प्रचलित थी। कुलवधू अपने पति की मृत्यु के पश्चात आग में जलकर मर जाना पसन्द करती थी। धूता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। वह अपने पति चारूदत्त की मृत्यु का अशुभ समाचार सुनकर चिता की ओर आगे बढ़ती हुई कहती है कि - "मुझे छोड़ दो, मैं आर्य पुत्र के मरन-रूप अमंगल को सुनने से डरती हूँ।" ४८ तत्कालीन समाज में "धूता" जैसी नारियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था यही कारण था कि उस समाज की गणिका(वेश्या) भी "वधू" बनने के लिए लालायित रहती थी भले ही इसके लिए उसे सर्वस्व न्योछावर क्यों न करनी पड़े। "मृच्छकटिकम्" काल में गणिकाएं बड़ी समृद्ध शालिनी हुआ करती थी। समृद्ध होने के साथ-साथ ये शिक्षा भी ग्रहण करती थी तथा विभिन्न प्रकार की कलाओं जैसे नृत्यकला, संगीतकला, आदि में भी कुशल होती थी। इसके बावजूद भी तत्युगीन समाज के लोग इन्हें सर्वसाधारण के उपभोग की वस्तु मात्र समझते थे। जिस प्रकार किसान अपने अनाज को बेचता है, व्यापारी अपने सामान को बेचता है उसी प्रकार इन स्त्रियों को भी बेचा जाता था केन्द्र में पैसा होता था इन स्त्रियों को पैसा देकर कोई भी व्यक्ति बाजार की चीज-वस्तुओं की तरह खरीद सकता था। तभी तो चारूदत्त अपने मित्र से बसन्तसेना के बार में कहता है कि "जिसके पास धन है, उसी की वह वसन्तसेना है क्योंकि वह वैश्य धन से खरीदी जाने योग्य है।" ४९ ऐसा

नहीं था कि स्त्रियाँ विश्वास नहीं करती थी धन प्राप्ति हेतु ये स्त्रियाँ (वेश्याएं) प्रेमी के साथ हँसती है और रोती भी है। ५० ऐसा नहीं था कि इनको बाजार की चीज-वस्तुओं की भाँति बेचने पर ये कोई आपत्ति उठायें बल्कि स्वयं भी मदद रूप बनती थी, धन प्राप्ति के लिए पर-पुरूषों को विश्वास दिलाती थी और स्वयं उन पर विश्वास नहीं करती थी।

इसलिए विवेकी एवं उत्तमकुल में पैदा हुए व्यक्तियों को चाहिए कि वे इस प्रकार की स्त्रियों का परित्याग उसी प्रकार कर दे जैसे श्मशान स्थल पर पड़ा कोई पुष्प खिला हो तो उसका कोई अस्तित्व नहीं होता ठीक इसी प्रकार इन स्त्रियों का भी अस्तित्व न के बराबर है ऐसा मानकर इनका परित्याग कर देना चाहिए। ५१

इस प्रकार की स्त्रियों पुरूषों का सारा धन हरण कर लेने के बाद धन-हीन पुरूष का उसी प्रकार परित्याग करती थी जैसे निचोड़े गये आलता (महा वर) को फेंक दिया जाता है। ५२ इस कोटि की स्त्रियाँ अत्यन्त निम्न और अपवित्र समझी जाती थीं, फिर भी अपने इच्छित पुरूष से विवाह करके "कुल-वधू" जैसे बन्दनीय पद को प्राप्त कर सकती थी। तभी तो शर्विलक मदनिका से कहता है कि "तुम बसन्तसेना का दर्शन करके अच्छी तरह से प्रणाम कर लो कारण कि इन्ही की कृपा तथा अनुकम्पा से तुम्हें दुर्लभ "वधू" पद प्राप्त हो सका है।"५३

तत्कालीन समाज में यदा-कदा राजा भी गणिका के गुणों से प्रेरित होकर उसे "वधू" शब्द से संबोधित करके उसे सम्मानित करता था। "वधू" विश्लेषणसे विशिष्ट गणिका वैवाहिक दृष्टि से अभीष्ट व्यक्ति की पत्नी बन सकती थी। प्रस्तुत नाटक में वसन्तसेना ऐसी ही नारी पात्र है जो राजा द्वारा "वधू"५४ पद से सम्मानित होकर चारूदत्त की पत्नी बन जाती है।

४- शिक्षा :---

ई.पू. चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध में शिक्षा का स्तर अच्छा था किन्तु

तत्कालीन समाज में प्राच्य शिक्षा का प्रचलन अधिक था अतः शिक्षा अनेकागी थी। गुरूकुलों में वेदाध्यन, गांधर्वविद्या, हस्ति-विद्या, संगीत, मंत्र, औषधि के रोगशमन इत्यादि का प्रचलन था। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रथम अंक तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण के द्वितीय अंक में इन शिक्षाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय गान, वाद्यादि भी सिखाया जाता था।

तत्कालीन समाज में शिक्षा का महत्व था। ''मालविकाग्निमित्रम्''नाटक में गणदास कहता है कि विद्या के लिए सबके हृदय में गौरव होता है। हम लोगों के हृदय में भी नाट्य विद्या के लिए जो गौरव है वह मिथ्या गौरव नहीं है। क्योंकि- मुनियों ने इस विद्या को कला को देवताओं के लिए सौम्य नेत्रयज्ञ कहा है, महादेव ने अपने अर्धनारीश्वर रूप में इसे दो (लास्य और ताण्डव) भागों में विभक्त किया है। इस नाट्यकला में श्रृँगरादि नव रस तथा सत्वादि तीन गुणों से चरित्र दिखलाया जाता है। जिससे इस एक ही कला के द्वारा भिन्न-भिन्न रूचि वालों का मानोविनोद हो जाता है। १ बकुलावलिका जब मालविका से शिक्षा ग्रहण के बारे में पूंछती है तो गणदास कहता हे कि देवी २ से कहना की मालविका शिक्षा ग्रहण में निपुण है।

तत्युगीन समाज में शिक्षा का निर्दोष होता बहुत जरूरी माना जाता था। मालविकाग्निमित्रम् नाटक में जिस समय नाट्याचार्य गणदास अपनी नाट्यकला का प्रदर्शन करता है। बाद में गणदास अपनी शिक्षा के गुणदोष के बारे में पूछता है तो उस समय न्यायिक बनी हुई परिव्राजीका कहती है कि-

अंगैरन्तर्निहितवचनैः सूचितःसम्यगर्थ :
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरमिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबन्धः स एव ॥ ३

अर्थात् तुम्हारी शिक्षा में कोई दोष नहीं है उस समय गणदास कहता है कि ''आप लोग उस शिक्षा को निर्दोष मानते हैं, जो आपलोगों के सामने अग्नि में सोने की तरह मलिनता को न प्राप्त हो'' ४

महाकवि भास कालीन समाज में शिक्षा अनेकांगी थी। गान्धर्व विद्या का वेद के रूप में पठन-पाठन कराया जाता था। ५ तत्कालीन समाज में

वाद्य, वीणा, हस्त विद्या, मन्त्र विद्या, नक्षत्र विद्या (खगोल शास्त्र) इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। वीणा वादन का विशेष-प्रचार प्रसार था। कन्याओं को वीणावादन शिक्षण के लिए शिक्षकों को नियुक्त किया जाता था। स्वयं राजा उदयन घोषवती वीणावादन में वश में कर लेता था। राजा प्रघोत वत्सराज उदयन के विषय में कहता है कि ----

मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणुं नरेन्द्रा
मुकुटतटविलग्नं मृत्यभूता वहन्ति।
न च मम परितोषो यन्न मां वत्सराजः
प्राणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृमः ।।

तत्कालीन समाज में हस्तविद्या का प्रचार भी रहा होगा क्योंकि उदयन को केवल वीणा के आधार पर नील कुवलय हाथी को पकड़ने के लिए कहते हुए प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नाटक में वर्णित किया गया है। महासेन कहता है कि मैने अपनी पुत्री वासवदत्ता के लिए संगीत शिक्षा का प्रबंध किया है।७ तत्कालीन समाज में वीणा (वाद्य शिक्षा) का भी महत्व था। राजा महासेन, जब रानी से वासवदत्ता के बारे में पूछता है तो वह कहती है कि वासवदत्ता उत्तरा नाम की वैतालिका के पास नाटकीय पद्धति से वीणा सीखने गयी है।८ मालविकाग्निमित्रं नाटक के अध्ययन के पश्चात् ऐसा पता चलता है कि उस समय शिक्षा व्यवस्था काफी सुदृढ़ थी। स्त्री-पुरूष सभी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। स्त्रियाँ अधिकतर ललित कलाओं की शिक्षा ग्रहण करती देखी जाती है। गुरूजन की संतुष्टि के पश्चात् ही शिक्षा पूर्ण एवं सफल मानी जाती थी। नाटक के प्रथम अंक में बकुलावलिका मालविका की शिक्षा पूर्ण हुई ऐसा इसलिए कहती है क्योंकि गुरूजन प्रसन्न हो गये हैं --"जिसके प्रति गुरूजन इस तरह प्रसन्न हैं, मैं समझती हूँ कि उसकी शिक्षा सफल हुई।"९ शिक्षक गण भी शिक्षा देने के लिए उत्तम पात्रों को ही नियुक्त करते थे, कारण कि उत्तम पात्र को दी गई शिक्षा ही शिक्षक को उत्कर्ष तक पहुँचाती है। इसी विषय में नाट्याचार्य गणदास कहता है --"मेघ का जल समुद्र शक्ति में पड़कर मुक्ता बन जाता है, वैसे ही उत्तम पात्र में दी गई शिक्षा उत्कर्ष प्रकट करती है।"१०

गणदास की शिक्षा मालविका की विशेषता के कारण ही गणदास की प्रशंसा हुई थी। ११

अधम शिष्य का चुनाव करना शिक्षक की बुद्धिहीनता का सूचक माना जाता था। क्योंकि मंदबुद्धि शिष्य उपदेश को मलिन ही करता है। इसी विषय में परिव्राजिका कहती है---

''श्लिष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।। ''१२

आचार्यों को अपने शिष्यों पर पूर्ण अधिकार होता था।१३ शिक्षकों की नियुक्ति वेतन पर होती थी। १४ यह सब होते हुए भी मात्र शास्त्रज्ञान ही केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं होता था। इसे जीविकोपार्जन का साधन मानने वाले लोगों की निन्दा विक्रेता या बनिया कहकर की गई है। गणदास कहता है ---

''यस्यागमः केवल जीविकायैः, तंज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति। ''१५
समकक्ष शिक्षकों में कभी-कभी विवाद भी हो जाया करता था। शिक्षकों के वाद-विवाद के समय उनके शस्त्र-ज्ञान तथा प्रयोग ज्ञान का परीक्षण होता था। जिसके लिए एक प्राश्निक की नियुक्ति की जाती थी। परीक्षण की पक्षपात की संभावना के कारण कभी भी एकाकी नहीं होता था। एकाकी व्यक्ति के सर्वज्ञ होने के बावजूद भी उसका निर्णय दोष युक्त माना जाता था। १६ नाट्यशास्त्र जैसी प्रयोग प्रधान विद्या का निर्णय प्रायोगिक रूप से ही होता था।

तत्कालीन समाज में शिष्य की परीक्षा से ही गुरू की भी परीक्षा की जाती थी। गुरू की परीक्षा साक्षात् नहीं होती थी। क्योंकि उस समय ऐसी मान्यता थी कि जिसमें ज्ञान होने के साथ-साथ शिक्षण कला की भी सामर्थ्य हो वही उच्चतम् शिक्षक माना जाता था। इसीविषय में परिव्राजिका कहती है--
''किसी को ज्ञान अधिक रहता है और किसी को पढ़ाने की कला में विषेज्ञता। जिसमें दोनों गुण हो वही शिक्षकों में प्रधान माना जाता है।'' ---

''श्लिष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।। ''१७

५- संस्कार :---

संस्कार शब्द धार्मिक क्रियाओं के लिए प्रयुक्त है। इसका अभिप्राय बाह्य धार्मिक क्रियाओं, अनुशासित द्वारा निर्दिष्ट प्रचलन औपचारिकताओं एवं अनुशासित व्यवहारों से नहीं है किन्तु, आन्तरिक और आत्यिक सौन्दर्य से है।

धर्मशास्त्र में (विवाहादि) षोडश संस्कारों का विवेचन प्राप्त होता है। किन्तु समाज में मुख्यरूप से यज्ञोपवीत, विवाह, और अन्त्येष्टि आदि का प्रचलन था। विवेच्य ग्रन्थ में उक्त संस्कारों में से विवाह, यज्ञोपवीत, और वेदारम्भ इत्यादि का संकेत प्राप्त होता है। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक से विवाह संस्था के संबंधमें नूतन जानकारी प्राप्त होती है। विवाह कार्य धार्मिक प्रक्रिया के साथ सम्पन्न होता था। लड़कियों के विवाह हेतु, उनके पिता द्वारा ''दूत संपात'' कार्य किया जाता था। १ कन्या प्रदान के समय गोत्र की अनुकूलता का ध्यान रखा जाता था। कभी-कभी वर भी स्वयं वधू का वरण कर लेता था। २ वैसे तो ऋग्वेद काल से ही बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी, लेकिन यह कुछ सम्पन्न वर्ग में ही देखने को मिलती थी। भास के समय में भी लोगों में यह प्रथा देखी जा सकती थी। महासेन के षोडशान्तः पुर का उल्लेख भास ने किया है। ३ विवाह संस्कार एक सामाजिक प्रथा के रूप में प्रचलित था। राजनैतिक उद्देश्य के लिए प्रायः वैवाहिक संधियाँ भी हुआ करती थी। विवाह में अग्नि साक्षी का महत्व था। राक्षस विवाह के उपरान्त भी उसे वैध रूप देने के लिए कुछ प्रतीकात्मक संस्कार किये जाते थे। ग्रन्थ में चित्रपट तथा वीणा व्यपदेश का उल्लेख है। ४ विवाह के समय लौकिक प्रथा का भी धार्मिक क्रिया के रूप में प्रचलन था। उक्त नाटक में ''कौतुक मंगल''५ एक ऐसी ही प्रथा थी कौतुक एक प्रकार का सूत्र होती है, उसे बाँधने की क्रिया को ''कौतुक मंगल'' कहा जाता है। विवाह की विधियों के अवसर पर होने वाले अनुष्ठानों का परिचय भी भास के नाटकों में मिलता है। ''स्वप्नवासवदत्तम् नाटक'' में पद्मावती के विवाह के लिए वासवदत्ता सौभाग्य माला का गुंफन करती है।

विवाह संपन्न होन पर वर-कन्या को अन्तः पुर में ले जाया जाता था और वहाँ धार्मिक विधि पूरी की जाती थी।

भास के समय में बहुविवाह प्रचलित था। स्वप्न में राजा महासेन के १६ रानियों का निर्देश प्राप्त होता है- ''षोडशान्तः पुरज्येष्ठा पुण्यानगर देवता।''६

भास के समय में धर्मशास्त्र प्रचलित ८ प्रकार के विवाहों में से ब्रह्म, क्षत्र,गन्धर्व, राक्षस एवं असुर विवाह के उदाहरण प्राप्त होते है। एवं में पद्मावती और वत्सराज उद्यन का विवाह ब्रह्म विवाह है। - यह विवाह समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। राक्षस विवाह का भी उदाहरण उदयन और वासवदत्ता का विवाह है। उदयन बलपूर्वक, वासवदत्ता का अपहरण करता है और माहसेन को पराजितकर वासवदत्ता को वत्स देश में ले जाता है।७

इस प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख कालिदास ने भी रघुवंशम् एवं कुमारसंभव में किया है। आज भी इसका प्रयोग होता है। विधवा होना, सपत्नी होना बुरा माना जाता है।

तत्कालीन समाज में विवाह संस्कार, नामकरण, यज्ञोपवीत, अन्त्येष्टि आदि संस्कारों को शास्त्रानुसार विधि-विधान से किया जाता था। धर्मशास्त्र में भी सोलह प्रकार के संस्कारों की चर्चा की गई है। जिनमें से विवाहादि संस्कार भास के समाज में भी प्रचलित था। भास ने गांधर्व विवाह को ही उचित बताया है और क्षत्रियों के लिए इस विवाह को श्रेष्ठ माना है। उदयन तथा पद्मावती का विवाह ब्राह्म विवाह था। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में कंचुकी ८ वासवदत्ता के विवाह को क्षत्रिय विवाह निर्दिष्ट करता है। राजा उदयन वीणा शिक्षणोपरान्त वासवदत्ता को हस्ति संभ्रम् दिवस पर लेकर भाग आता है और यौगन्धरायण को उसके भागने पर भी हार स्वीकृति के उपरांत भी ले जाने का समर्थन करता है। राजकन्या के विवाह के लिए राजकुलों से प्रतिदिन दूत आया करते थे।९ विवाह सवर्ण में ही होता था। वर के लिए कुलीनता, दयालुता, गौरव, सौन्दर्य आदि गुण आवश्यक माने जाते थे।१०

विशाखदत्त के समय में भी विवाह संस्कार समाज का मौलिक अधिकार

समझा जाता था। सामान्यतः गृहस्थाश्रम के सभी लोगों से इसमें प्रवेश करने की उम्मीद की जाती थी। नाटक में विवाह संबंधी कोई खास प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। शायद तत्कालीन समाज में ब्राह्म विवाह ही प्रचलित था, जिसमें कन्या के माता-पिता वेद-विधि-विधान से कन्यादान करते रहे होंगे। ऐसी कन्या के लिए नववधू ११ शब्द का प्रयोग किया जाता था। नाटक के दूसरे अंक के अध्ययन से यह पता चलता है कि तत्युगीन समाज में राक्षस एवं पैशाच विवाह का प्रचलन रहा होगा लेकिन इसका अत्याधिक प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। विवाह के कुछ नीति-नियम बनाये गये थे जैसे-- सवर्णों में विवाहादि करना। विवाह के बारे में कुछ अपवाद भी थे। लोम या प्रतिलोम विवाह (निम्न वर्ण की कन्या एवं उच्च वर्ण का वर तथा उच्च वर्ण की कन्या निम्न वर्ण का वर) पसंद नहीं किया जाता था। यह श्लोक इस बात की पुष्टि करता है ---

पृथिव्यां किं दग्धा प्रथित कुलजाः भूमिपतयः।
पतिं पापे ! यदसि कुलहीनं वृतवती ।। १२

जनसाधारण समाज के एक पत्नीव्रत का ही प्रचलन था, लेकिन समृद्ध घरानों में लोग के १३ एक पत्नी से अधिक स्त्रियों से विवाह कर सकते थे। ऐसे पुरूष की पत्नियाँ सपत्नी कही जा सकती हैं।

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति

समाज साहित्य की नींव माना जाता है, जिस पर टिककर साहित्य खड़ा होता है, पुष्पित और पल्लवित होता है। हमारे साहित्यकारों ने साहित्य और समाज के संबंधों को लेकर काफी विस्तार से चर्चा की है जिसकी आवश्यकता यहाँ नहीं है किन्तु इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य समाज का प्रेरक है, साहित्य समाज का दीपक है। इसलिए समाज को साहित्य की नींव मानना अनुपयुक्त नहीं है।

साहित्य की तमाम विधाएं जैसे नाटक कहानीं, उपन्यास, कविता आदि अधिकांशत: अपने विषय-वस्तु समाज से ही ग्रहण करती हैं और साहित्य को सुदृढ़ बनाती हैं। नाटक के सन्दर्भ में देखें तो नाटक के कई प्रकार, जैसे ऐतिहासिक नाटक, सामाजिक नाटक, पौराणिक नाटक, सांस्कृतिक नाटक, राजनैतिक नाटक, आदि देखने को मिलते हैं किन्तु इन सभी नाटकों में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में समाज अवश्य जुड़ा होता है। समाज से अलग हटकर साहित्य की, खास कर नाटक के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। नाटक का प्रेक्षक वर्ग भी समाज ही होता है। समाज की अच्छाइयाँ-बुराइयाँ एवं घटित-अघटित घटनाओं को लेकर नाटक लिखा जाता है और वह अपने-अपने ढंग से समाज को प्रभावित करता है। यहाँ हम हिन्दी नाट्य साहित्य के कुछ ऐतिहासिक नाटकों में निरूपित समाज का विश्लेषण करना चाहेंगे।

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में प्राचीन भारतीय समाज के स्वरूप

का निरूपण हुआ है। भारतीय हिन्दू समाज का यह स्वरूप थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ वही का वहीं रहता है। आज 21वीं सदी में भी हमारे भारतीय हिन्दू समाज का ढांचा वही है जो सौ साल पहले था। भले ही हम वर्षों तक अंग्रेजों के अधीन रहे, उसके पहले मुगलों के, फिर भी हमारी सोच, नजरिया, मानसिकता, संस्कृति आज भी भारतीय ही है।

हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक नाटकों में उस समय के समाज का स्पष्ट चित्र देखने को मिलता है। यहाँ पर हम ऐतिहासिक नाटकों में वर्णित सामाजिक चित्रों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हुए यह देखने का प्रयास करेंगें कि उन चित्रों में आधुनिक समाज कितना दिखायी देता है।

वर्ण एवं वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था प्राचीन काल से समाज को अपनी शक्तिशाली बाहु-पाशों में जकड़े हुए है। मनु ने जिस वर्ण व्यवस्था की शुरूआत की थी, उसे आज भी हमारे समाज में सम्मान मिल रहा है। इस वर्ण व्यवस्था की परम्परा एक लंबे अरसे से चली आ रही है किन्तु बीच-बीच में हिन्दुओं का ही एक ऐसा समुदाय इसे उचित न ठहराते हुए समाप्त कर देना चाहता था जैसे बौद्ध सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय आदि ने इस व्यवस्था का जमकर विरोध किया है किन्तु फिर भी यह व्यवस्था जीवित रही और गुप्तकाल में इसका काफी विकास हुआ। इस प्रकार यह वर्ण व्यवस्था परम्परा समय-समय पर दृष्टिगत होती रही। चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में ब्राह्मणत्व की जय-जयकार हुई। गुप्त साम्राज्य में खासकर स्कन्दगुप्त के कार्यकाल में सामाजिक संघर्ष होते रहे और इसका ढांचा

कभी सुदृढ़ होता तो कभी जर्जर होता दिखायी देता है ।नाटककार जयशंकर प्रसाद अपने नाटक 'अजातशत्रु' में प्राचीन हिन्दू के सामाजिक संघटन की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाये क्योंकि उस समय बौद्ध धर्म की प्रधानता थी, फिर भी ऐसे कई उदाहरण दृष्टिगत होते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय का समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में बँटा हुआ था। 'अजातशत्रु' के दो पात्र वसंतक और विरूद्धक के कुछ संवाद ब्राह्मण और क्षत्रिय के गुणों और कार्यों की ओर संकेत करते हुए दिखायी देते हैं।1

'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य ब्राह्मणत्व की महत्ता को स्वीकार करता है उसी के शब्दों में--''ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि वैभव है।''2 वह आगे कहता है--''ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।''3 इसी तरह से लक्ष्मी नारायण मिश्र के संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक 'वितस्ता की लहरें' में विष्णुगुप्त जो आशीर्वाद देता है उससे ब्राह्मण के ब्राह्मणत्व का स्पष्ट उल्लेख हो जाता है उन्हीं के शब्दों में-''परिस्थिति का विवेकर भूलकर मैं वह आशीर्वाद दे रहा था। जब तक वितस्ता में जल है तब तक के लिए सुहाग विवेक निष्ठा से हीन होता नदी के जल की आयु हम मानवों की नहीं होगी। तक्षशिला के पश्चिम समूचे गान्धार, अश्मक और निषद भूमि की कुल बधुओं का सुहाग, जिनके पति अभी जीवित हैं, जो वन और पर्वतों में विदेशी दासता के प्रतिकार में भटक रहे हैं, यवन सैनिकों ने छीन लिया। जिनके अपने धर्म में पतिव्रता का भाव नहीं है, वे अपने विजितों में यह भाव कैसे रहने देगें।''4

इसी नाटक में पुरू के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय से श्रेष्ठ होता है, इससे साफ जाहिर है कि वर्ण-व्यवस्था तत्कालीन समाज में पूर्ण रूपेण व्याप्त थी। पुरू का कथन है--"बालक ब्राह्मण भी वृद्ध क्षत्रिय से श्रेष्ठ है। जिसके चरण का चिन्ह विष्णु के वक्ष का श्रृंगार है।"5 विष्णुगुप्त के इस कथन से यह स्पष्ट होता है इस युग के पूर्व जो समय था उसमें वर्ण-व्यवस्था का पूरी तरह से पालन हो रहा था किन्तु आज वर्ण-व्यवस्था के पालन में शिथिलता आ गयी है तभी तो वह कहता है--"ब्राह्मण का वह युग बीत गया, नहीं तो मगध का राजदण्ड शूद्र के हाथ में न होता और न कात्यायन और वररूचि की मेधा शूद्र की सेवा में लगती। सिंहासन पर आइये।: : : बैठ जाओ प्रियदर्शन भद्रबाहु। अग्निवर्ण, तुम भी बैठो। तक्षशिला का विद्याभवन नहीं हैं यह, जहाँ आचार्य और शिष्य के आसन में भेद होगा।"6

वर्ण-व्यवस्था के तहत मनु ने क्षत्रिय के लिए आपत्तिकाल में भी भिक्षावृत्ति को कोई स्थान नहीं दिया है। जबकि प्रसाद ने भी भिक्षावृत्ति को क्षत्रिय का आपर्द्धम नहीं मानते, फिर भी देश के दुर्दशाग्रस्त वीर हृदयों की सेवा के लिए पर्णदत्त भिक्षावृत्ति को स्वीकार करता है और कहता भी है--"मै क्षत्रिय हूँ। मेरा यह पाप ही आपद्धर्म होगा।"7 वैसे तो भिक्षावृत्ति को पाप माना गया है किन्तु यहाँ परिस्थितियों से विवश होकर पर्णदत्त भिक्षावृत्ति को आपर्द्धम मानने के लिए मजबूर हो जाता है। चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य के एक कथन से वैश्य, रक्षण करने वाला क्षत्रिय और सेवा करने वाला शूद्र है।8 मनु ने शूद्र के लिए एक मात्र कर्म तीनों वर्णो की सेवा करना माना है। यथा----

"एकमेव तु शू दृश्य प्रभुः कर्म सामदिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।"9

इस प्रकार प्रसाद के नाटकों में शूद्र की सेवावृत्ति तथा उनकी हीनता ही दृष्टिगत होती है। कहने का आशय यह है कि वर्ण व्यवस्था का पूर्णतः पालन प्रसाद ने अपने नाटकों में किया है।

प्रेमी के नाटक 'शिवा-साधना' का नायक शिवाजी देश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। लेकिन उनके अन्दर वर्णगत भेद-भाव नहीं है, वे सभी वर्णों, धर्मों, जातियों और समुदायों को एक समझते हैं तभी तो वे मोरोपन्त से कहते हैं कि-"मैनें कभी किसी मस्जिद की एक ईट को भी आँच नहीं आने दी। जहाँ मुझे कुरान मिला है मैनें उसे आदर के साथ किसी मौलवी के पास पहुँचा दिया है। मैं जो बीजापुर और दिल्ली की बादशाहत की जड़ उखाड़ डालना चाहता हूँ वह इसलिए नहीं कि वे मुस्लिम राज्य हैं, बल्कि इसलिए कि वे आततायी हैं, एक तन्त्र हैं, लोकमत को कुचल कर चलने के आदी हैं।"10

इस प्रकार ऐतिहासिक नाटकों में नाटककारों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था का युगानुरूप चित्रण किया है।

हिन्दू समाज में तत्कालीन समाज में चार आश्रमों की व्यवस्था थी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इन सबके लिए 25-25 वर्ष का समय निर्धारित था । सम्पूर्ण समाज इसका बड़े आदर के साथ पालन कर रहा था। नाटककार प्रसाद ने अपने नाटकों में कहीं-कहीं पर इन आश्रमों का संकेत दिया है जैसे- चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य का कथन है--"सौम्य! कुलपति ने मुझे गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है।"11 इससे स्पष्ट होता है कि गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के पूर्व विद्यार्थियों को विद्याध्ययन के दरम्यान ब्रह्मचर्य आश्रम में रहना पड़ता था।

प्रसाद ने कहीं भी इसका संकेत नहीं दिया है कि ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्था का समय कितने वर्ष का होता था। गृहस्थाश्रम के लिए स्वच्छता और पवित्रता की नितान्त आवश्यकता थी। 'स्कन्दगुप्त नाटक' में मातृगुप्त का कथन है कि – ''किसी आर्य सद्गृहस्थ के स्वच्छ और पवित्र आँगन की भूखी जाति के निर्वासित प्राणियों को आनन्द देकर संतुष्ट करेगी।''12

इससे स्पष्ट है कि प्रसाद ने उसे गृहस्थ माना है जो स्वच्छता और पवित्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करता हो साथ ही गृहस्थाश्रम में गरीबों व दीन-दुखियों को अन्न दानादि देकर उन्हें सन्तुष्ट कर देता हों इसी तरह से गृहस्थाश्रम के पश्चात वानप्रस्थ आश्रम की ओर प्रसाद ने संकेत दिया है संस्कृताचार्य मनु ने इस प्रथा का विधान किया है उन्होंने कहा है कि जब गृहस्थ वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाय तब अपनी सन्तान को गृहस्थाश्रम का भार सौंपकर वन में चला जाय।13 इस आश्रम व्यवस्था के केन्द्र में जो मानवीय प्रवृत्ति निहित है उसका संकेत प्रसाद इस प्रकार देते हैं। --''जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम मे है। इस वाह्य हलचल का उद्देश्य आन्तरिक शान्ति है, फिर जब उसके लिए व्याकुल पिपासा जग उठे तब उसमें विलंब क्यों करें?''14 आश्रम व्यवस्था का अंतिम वर्ग सन्यास है। वैसे तो प्रसाद ने इसका कहीं भी स्पष्ट और स्वतंत्र उल्लेख नहीं किया है किन्तु जब चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के पिता को अपने अभिमान को मारने के लिए 'काषाय ग्रहण करने का' आदेश देता है तो यहाँ पर 'काषाय ग्रहण का' का प्रयोग 'सन्यास' धारण करने के लिए किया गया है। प्रसाद ने बौद्ध भिक्षु बनने के अर्थ में 'काषाय ग्रहण' शब्द का कई बार प्रयोग किया है जिसका अर्थ सन्यास आश्रय से ही लगाया जाता है। इस प्रकार नाटकों में समाज की यह व्यवस्था प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से दिखायी दे जाती है।

मिश्र रचित नाटक 'वितस्ता की लहरें' में भद्रबाहु से सन्यास आश्रम की बात करता है स्वयं भद्रबाहु पुरू से कहता है कि --"शत्रु का पुत्र होने से जो आपसे यह न हो तो सन्यास का मार्ग मेरे लिए खुला है।"15

धार्मिक स्थिति

भारतीय इतिहास के पन्नों से धर्म को न तो निकाला गया है और न ही निकाला जा सकता है। हमारा भारतीय धर्म संस्कृति आदि साहित्य के इतिहास के पन्नों पर सदा अंकित होते रहे हैं और रहेंगे। यह दूसरी बात है कि कभी इन धर्मो में विकार आ जाता है तो हमारे समाजकारी एक वर्ग उन विकारों का विरोध करके इसे स्वस्थ बनाना चाहता है। उदाहरण के तौर पर देखना चाहें तो वैदिक युग पूरा इसी धर्म पर ही टिका हुआ है। धीरे-धीरे जैनों का आगमन हुआ उन्होंने धार्मिक स्थितियों का मूल्यांकन किया उसमें उलझी हुई तथा धर्म के नाम पर भटकती हुई जनता को सुधारने का प्रयास किया खुलकर धर्म का (धार्मिक विकृतियों का) विरोध किया। तत्पश्चात् बौद्धधर्म ने अपना अस्तित्व ग्रहण किया और उसने धर्म के नाम पर शोषण करने वाले कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का जमकर विरोध किया और अपने धर्म, बौद्ध धर्म की स्थापना की। जिसका संकेत नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों में खासकर ऐतिहासिक नाटकों में यथास्वरूप किया है। फिर भी यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन धार्मिक प्रभाव के कारण पूर्वधर्म समाप्त हो गया। समय आने पर या क्षणिक आगन्तुक धर्म के प्रभाव के कम हो जाने के कारण कर्मकाण्ड की व्यापकता का महत्व फिर से बढ़ गया। इन सबका उल्लेख नाटककारों

ने विषय-वस्तु की उपयोगिता के अनुसार अपने नाटकों में किया है। 'राज्यश्री' नाटक में प्रसाद ने बौद्धधर्म के नये जीवन के स्वरूप को उभारा है। प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण धर्म के समय-समय पर परिवर्तित हुए स्वरूपों में की ओर अपने नाटकों की ओर कोई संकेत नहीं दिया है। वैसे देखा जाय तो 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' नाटक में ब्राह्मण धर्म के स्वरूप में थोड़ा बहुत अन्तर दिखाई देता है। इस प्रकार प्रसाद जैसे अन्य नाटककारों ने भी धार्मिक स्थितियों पर यथा स्थान प्रकाश डाला है।

प्रसाद के नाटकों में देवी-देवताओं का उल्लेख मिलता है। डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी ने उनके नाटकों में प्रयुक्त देवी देवताओं तथा अर्धदेवताओं का भी उल्लेख किया है।

देवी

''सरस्वती,1 छिन्नमस्ता, 2 लक्ष्मी, 3 तारा, 4 देवी की उग्र मूर्ति, 5 (संभवत: काली) शची,6 एवं सिंहवाहिनी,7(दुर्गा)

देवता

इन्द्र,8 सविता,9 रूद्र,10 कुबेर,11 वामन,12 चक्रपाणि भगवान,13 विश्वम्भर,14 महाकाल15, शेषपंच्चकशायी,16 राम,17 वटपत्रशयी,18 और कृष्ण,19

अर्धदेवता

प्रसाद ने अप्सरा20, सुर-सुन्दरियां21, अपदेवता22, तथा यक्ष23, का नामोल्लेख किया है, इनको अर्धदेवताओं की कोटि में रखा जा सकता है, गणों में भैरव 24, भैरवी25, इत्यादि भी इसी श्रेणी में रखे जायेंगे।''26

तत्कालीन समाज में लोग तंत्र-मंत्र पर भी विश्वास किया करते

थे। उदाहरण स्वरूप उसी का का चित्र भारतेन्दु रचित नीलदेवी नाटक से प्रस्तुत किया जा रहा है। 'नीलदेवी' नाटक के आठवें दृश्य में एक पागल घूमता हुआ आता है। और कहता है--"मार-मार, मार-शस्त्र न हो तो मंत्र से मार। मार मार मार। हां हीं हूं फट चट पट् जवन पट पट चट छट पट आई ऊँ आकास बाँध पाताल चोटी कटा निकाल। फः-हां हीं हौं जवन जवन मारय मारय उच्चाटय-उच्चाटय बेधय बेधय......नासय नासय...... . फांसय-त्रासय त्रासय, स्वाहा फूः सब जबन स्वाहा फूः अब भी नही गया मार मार मार।"27 आलोच्य कालीन समाज के ऐतिहासिक नाटकों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज के लोग पूजा-पाठ भी किया करते थे, फलस्वरूप लोगों को धार्मिक कृत्यों पर भी विश्वास था। 'शिवाजी साधना' नाटक के प्रारम्भ में ही शिवाजी माँ भवानी की प्रार्थना करते हुए दिखायी देते हैं। शिवाजी कहते हैं--"माँ भवानी ! इस उज्जवल आकांक्षा की आग को अपने आशीर्वाद से तीव्र कर दो। मुझे वल दो साहस दो और वह अदम्य पागलपन दो, जिससे मैं स्वातन्त्र्य-साधना में केवल सांसारिक सुखों को ही नहीं बल्कि प्राणों की आहुति भी दे सकूँ। निस्पृह, निर्विकार, निर्लिप्त और निरहंकार होकर कर्म कर सकूँ।"28

इसी नाटक में शिवाजी के समवयस्कं मित्र राष्ट्र प्रेम के लिए अपने वचे हुए जीवन को अर्पित कर देना चाहते हैं और प्रार्थना की कामना करते हुए प्रतिज्ञा लेते हैं--"हम राष्ट्र के लिए अपना शेष जीवन अर्पित करतें हैं। हम देश और समाज के लाभ के लिए अपने सुखों और हितों की बलि दे देनें को प्रस्तुत हैं।"29

तत्युगीन समाज में भी लोग देवी-देवता पर भी विश्वास किया करते थे। 'नीलदेवी' नाटक राजा सूर्यदेव जिस समय पिंजड़े के अन्दर

मूर्च्छित अवस्था में पड़े होते हैं, उस समय किसी के गाने की आवाज उनके कानों में पड़ती है। जिसे वे देवता समझ लेते हैं। सूर्यदेव कहते हैं---''यह कौन था? इस मरते हुए शरीर पर इसने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यों बरसाया? अरे अभी तो यहाँ खड़ा गा रहा था, अभी कहाँ चला गया? निःसन्देह यह कोई देवता था। नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता? ऐसा सुन्दर रूप और ऐसा मधुर सुर और किसका हो सकता है?''30 यही नहीं कि लोग देवी-देवता, पर ही विश्वास करते थे बल्कि तत्कालीन समाज निराश हो जाने पर ईश्वर पर आश्रित हो जाता था तथा समस्या निवारणार्थ ईश्वर की प्रार्थना करने लगता था। 'नीलदेवी' नाटक में जब राजा सूर्यदेव अधर्म युद्ध में मार दिया जाता है तब जनता के सामने देश को बचाने के लिए हरिस्मरण के अलावा और कोई मार्ग नहीं बचता है। वहाँ की प्रजा देश की रक्षा हेतु हरि का स्मरण करती है--

''कहाँ करूणानिधि केशव सोए।
जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोए।
+ + + + + + + +
सब निधि बूड़त लखि निज देसहि लेहुँ न अबहुँ बचाई।।''31

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही लोग धर्म-कर्म पर भी विश्वास करते हुए देखे जाते हैं तथा आज वैज्ञानिक युग में जहाँ इन्टरनेट, ई-मेल, मोबाइल फोन जैसी टेक्नोलोजी का विकास हो गया है, वहाँ पर भी लोग उससे मुख नहीं मोड़ पा रहे हैं। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' महाभारत की इस उक्ति को चरितार्थ करती हुई मिश्र जी के नाटक 'वितस्ता की लहरें' का पात्र विष्णुगुप्त शशिगुप्त को निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कहता है कि--'' फल की चिन्ता छोड़कर जहाँ

कर्म करना है वहाँ जय और पराजय दोनों एक हैं। कुरूक्षेत्र का मन्त्र वितस्ता के तट पर दुहराया जा रहा है।''32 इसी तरह 'शक-विजय' नाटक में नाटककार उदयशंकर भट्ट जी यह बताना चाहते हैं कि धर्म का मामला व्यक्तिगत होता है इसमें राज्यादि को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अग्निज्योति कालकाचार्य जैन साधू से धर्म के विषय में बातचीत करते हैं तथा इस संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि--''प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता होनी चाहिए कि यथेष्ट रूप से अपनी इच्छानुसार धर्म का पालन करे।''33 इसी नाटक का एक पात्र मंखलिपुत्र महामात्य को धर्म के महत्व के बारे में बताते हुए कहता है कि--''धर्म का अर्थ है, उन साधनों का उपयोग, प्रयोग जिनके द्वारा मनुष्य की आत्मा शुद्ध हो, उसे सरलता से जन्म-मरण के बन्धन से अवकाश मिल जाये, मोक्ष प्राप्ति हो।''34

समाज में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो धर्म की व्यापकता पर प्रश्नचिन्ह लगाकर धर्म की निन्दा करते हैं तथा वाह्याडम्बरों का प्रदर्शन करते हैं। जिन्हें नास्तिक की श्रेणी में रखा जा सकता है। धर्म की निन्दा को अनुचित बताते हुए नाटककार भट्ट जी करते हैं कि --''धर्म को वाह्याडम्बरों और प्रदर्शन का विषय बना लेने के कारण ही संघर्ष का जन्म होता है।''35

आलोच्यकालीन नाटकों में भविष्यवाणी पर भी लोग विश्वास करते थे। प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' में दाण्ड्यायन अलक्षेन्द्र को सावधान करता है तथा भारतवर्ष का भावी सम्राट होने की भविष्य वाणी भी करता है।36 इसी प्रकार मिश्र रचित 'वितस्ता की लहरें' नाटक में शशिगुप्त कहती है कि नियरकस का विवाह उसी से होगा जिसके पुजारी भविष्यवाणी करेंगे, स्वयं शशिगुप्त कहती है --''डेल्फी के मन्दिर का पुजारी जिस तरुणी की

भविष्यवाणी करेगा उसी से नियरकस का विवाह होगा।''37

मिश्र जी धर्म और स्वाधीनता दोनों की महत्ता को बनाये रखना चाहते हैं क्योंकि धर्म के पूर्ण पालन के लिए स्वतन्त्रता आवश्यक है। इसलिए जब तक देश पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र नहीं होगा तब तक देश में धार्मिक विकास नहीं हो सकेगा यही कारण है कि मिश्र जी धर्म के साथ-साथ स्वतन्त्रता को भी महत्व देते हैं और नाटक की एक पात्र रोहिणी द्वारा कहलवाते हैं कि--'' स्वाधीनता के बिना धर्म नहीं टिकता और जहाँ धर्म नहीं उस देश में कौन रहे?''38

इसी तरह नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों में तत्युगीन धार्मिक प्रथाओं को स्वानुकूल चित्रित किया है क्योंकि समाज में प्रभावित प्रभाव को नाटककार या कोई भी रचनाकार छोड़ नहीं सकता यदि वह ऐसा करता है तो उसकी रचना यथार्थ से हटकर मानी जायेगी। इसलिए सभी ने उस समय की धार्मिक स्थितियों तथा परिस्थितियों को अपनी-अपनी क्षमता और ज्ञान के अनुसार अपनी नाट्यकृतियों में समाहित किया है।

नारी की स्थिति

प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान सदा-सर्वदा से उच्च रहा है वैदिक युग में नारियों को पूर्ण-स्वतंत्रता थी शिक्षादि में किसी तरह का कोई बंधन नहीं था। यहां तक कि वेद मंत्रों को भी लिखने की पूर्ण छूट दी गयी थी किन्तु धीरे-धीरे समय बदलता गया और-'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' वाले देश में नारियों की स्थिति दिन प्रतिदिन दर्दनाक होती गयी। मनु के आगमन के पश्चात् नारियों की काया ही पलट गयी मनु ने नारियों के लिए तरह-तरह के नियम बना

दिये जहाँ एक समय में नारियों को वैदिक ऋचाओं के लिखने की छूट दी गयी थी, वहीं मनु ने उन ऋचाओं को सुनने तक पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। बौद्धों के समय में भी नारी की स्थिति खराब ही रही। धीरे-धीरे समय बदलता गया, मध्यकाल से होते हुए आधुनिक काल तक की यात्रा तय की गयी। और धीरे-धीरे नारियों को पुनः सम्मान दिया जाने लगा शिक्षादि की व्यवस्था हो गयी है।

भारतीय समाज में नारियों ने अपने स्थान को प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम किए स्वतंत्रता आंदोलन के पूर्व तथा पश्चात् नारियों ने तमाम आन्दोलन करके अपनी शक्ति और क्षमता का परिचय दिया। अब नारी उस पुरानी किम्वदन्ती (नारी अबला है) को झुँठलाकर अपने सबलपन को स्थापित कर दिया है। पुरुषवर्ग के कदम से कदम मिलाकर चल रही है। आज वह कोई काम नहीं है जो मात्र पुरूष ही करता हो और नारियाँ न कर सकती हो। यहाँ तक कि आज नारियां नौकरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहीं हैं दोहरी जिम्मेदारियों का निर्वाह कर रही हैं इतना ही नहीं घर बैठे बेकार पतियों की जिम्मेदारी को अपने कंधे पर लेकर हंसते-हंसते अपना जीवन बिता रही हैं। यह तमाम सन्दर्भ हमारे समाज के हैं इसलिए साहित्यकारों व नाटककारों ने इन्हें नजरन्दाज नहीं किया हैं। अगर नाटककार प्रसाद का युग मनु युग होता तो शायद उनकी ध्रुव स्वामिनी यह न कहती कि--''मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।1

प्रसाद ने अपने नाटकों में जहाँ नारी नायिका के रूप में प्रस्तुत

होती है वही वह खलनायिका के रूप में भी दिखायी देती है। प्रसाद नारी को करुणा और त्याग की मूर्ति बताकर उसे पुरूष के बराबर महत्व देते हैं। कामायनी की एक पंक्ति इसका प्रमाण है--

तुम भूल गये पुरूषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता सम्बन्ध बनी,
अधिकार और अधिकारी की।।"2

प्रसाद ने नारियों के राष्ट्र   धर्मी रूप को भी उजागर किया है उन्होंने नारियों के माध्यम से ही इस युग की राष्ट्र   ीय भावना को उजागर किया है। प्रसाद की ये नारी पात्र कमला, रामा, जयमाला तथा अलका आदि नारियाँ अपने देश के प्रति अनुराग रखने वाली हैं। इनमें से कमला और रामा में स्वामिभक्त है इसीलिए कमला अपने पुत्र भट्टार्क स्वदेश प्रेम जगाती है, और रामा स्वामिभक्ति के कारण ही देवकी की सेवा में अपने प्राणों की बलि देना चाहती है। रामा का पति जब षडयंत्रों में फँसकर देवकी की हत्या करने वाला होता है तो रामा उसकी सूचना देवकी को दे देती है। स्वदेश प्रेम की भावना जयमाला में भी है, किन्तु उसमें नारी सम्मान और राज्य का लोभ भी है। फिर भी वह अपने पति के अटल निश्चय के आगे सिर झुका देती है। जयमाला स्कन्दगुप्त को मालव का सिंहासन समर्पित कर देती है और कहती है--"देव! यह सिंहासन आपका है, मालव देश का इस पर कोई अधिकार नहीं है।"3 इस प्रकार प्रसाद ने भारतीय इतिहास का अवलोकन किया है और उसी के आधार पर अपने साहित्य को निर्मित किया है।

प्राचीन काल में भारतीय समाज की नारी को गौरव पूर्ण पद

प्राप्त था लेकिन मध्यकाल में स्त्रियों की दशा काफी हीनावस्था तक पहुँच गयी। पुनः आधुनिक काल के नाटककारों ने पुनर्जागरण काल में नारी उत्थान के विषय में सोचा तथा उस पर रचनाएं प्रस्तुत की तभी तो 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी अपनी रक्षा स्वयं करना चाहती है। इसी प्रकार भट्ट जी रचित नाटक 'शक-विजय' ब्राह्मण तथा जैन संघर्ष पर आधारित नाटक है। उसकी नायिका सरस्वती भी यह नहीं चाहती कि उसके कारण नर-संहार हो। नाटक के दो पात्र मंखलिपुत्र तथा कालकाचार्य ब्राह्मण तथा जैनधर्म के नता हैं वह आचार्यकालक जो कि सही सही रास्ते पर चल रहे हैं इसकी सूचना राजा को देना चाहती है लेकिन नारी स्वभाव के कारण उसके मन में द्वन्द्व पैदा होता है और वह सोचती है--"मैं महाराज से मिलना चाहती हूँ क्या पत्र लिखूँ। पत्र यह मुझसे नहीं हो सकेगा पर पुरुष को.... अरे ! यह अपर का भाव कैसा, मैं तो साध्वी हूँ न। मैं पत्र लिखूँगी मैं उनसे मि ही क्यों न लूँ! एक बार देखूँ महाराज को....। नहीं, नहीं...।"4 इसी नाटक में सौम्या और सरस्वती नारी के गुणों से युक्त पात्र हैं। सरस्वती की सुन्दरता की लोकप्रियता अवन्ती के जीवन में एक हल पैदा कर देती है। सरस्वती प्रस्तुत नाटक में हमारे सामने एक साधिका के रूप में प्रस्तुत है, कुलवधू, पत्नी या प्रेयसी के रूप में नहीं। उसमें नारीत्व के वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक नारी में होने चाहिए। साथ ही साथ वह अपने कर्तव्य पथ पर भी सजग है वह कहती है--"क्या यह मिथ्या प्रवाद है कि महाराज कामुक है? (सोचकर) भ्रम है, मेरा भ्रम है। मुझे दो में से एक मार्ग तय करना होगा....। ओह उस दिन दूर से देखा था। महाराज की आँखो से कितना मधु झलकता था।"5

आलोच्यकालीन नाटक की नारी पात्र अपने निजी स्वार्थ को गौण तथा देश हित को मुख्य मानती है इससे ऐसा सिद्ध होता है कि नारियां देश हित को सर्वोपरि समझती थी। शक-विजय नाटक की सरस्वती का पात्र इतना आदर्श युक्त है कि जब प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की ज्वाला भड़क उठती है उस समय सरस्वती अपने निजी स्वार्थ की महत्ता को प्राथमिकता न देते हुए देश की महत्ता को ही सर्वोपरि समझती है और कहती है--"मुझे ज्ञात नहीं था इतना रक्तपात केवल मेरे लिए होगा, इतना नर संहार केवल मेरे लिए होगा। एक विदेशी शक्ति को आचार्य लेकर आयेंगे। आज हमारा अहिंसा धर्म कहाँ गया? भगवान ज्ञातृपुत्र मुझे सहन शक्ति दो। आचार्य तुम तो परम जैन थे। क्या तुम्हें यह अधर्म दिखाई नहीं पड़ा?"6

भारतेन्दु को हिन्दी नाटकों का अग्रदूत माना जाता है इनके द्वारा रचित 'नीलदेवी' ऐतिहासिक कोटि का प्रथम नाटक है। यह ग्रन्थ ही वे नारियों के समर्पण में लिखते हैं। ग्रन्थ समर्पण में ही उन्होंने लिखा है--"मातृ भगिनी-सखी-तुल्या आर्य ललना गण को।"7 इस नाटक में नाटककार भारतेन्दु ने नारियों की हीनावस्था का चित्र प्रस्तुत करना चाहा है, उन्होंने इसके विषय में लिखा है कि--"मैं कोई सिद्ध नहीं कि रागद्वेष विहीन हूँ। जब मुझे अंग्रेजी रमणी लोग मेदसिंचित केश-सिंचित, कृत्रिम कुन्तल जूट, मिथ्या रत्ना भरण और विविध वर्ण वरन से भूषित, क्षीण कटि देशकसे, निज-निज पतिगण के साथ, प्रसन्नवदन इधर से उधर फर-फर कलकी पुतली की भाँति फिरती हुई दिखलाई पड़ती है तब इस देश की सीधी-सादी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और बात मेरे दुःख का कारण होती है।"8 नाटक की भूमिका में ही भारतेन्दु जी नारियों को देश की विपत्ति में सहायक बनने तथा उसके निवारणार्थ मदद होने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं

कि--"जिस भाँति अंग्रेजी स्त्रियां स्वाधीन होती हैं, पढ़ी-लिखी होती हैं, घर का काम-काज संभालती हैं, अपने संतान गण को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति-विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को व्यर्थ गृहदास्य और कलह ही में नहीं खोती, उसी भाँति हमारी गृहदेवता भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है। इस उन्नति-पथ का अवरोध हम लोगों की वर्तमान कुल-परम्परा मात्र है और कुछ नहीं।"9

शिव-साधना नाटक में जिस प्रकार नायक का चरित्र उज्जवल है उसी प्रकार नायिका का भी देखने को मिलता है। नायक की भाँति ही नायिका भी देश-प्रेम से परिपूर्ण है। इस नाटक में नायिका किसे माना जाय यक एक विकट समस्या है- सईबाई, जेबुन्निसा, अकाबाई या फिर जीजाबाई10 को? सईबाई की पत्नी होने के साथ-साथ राजनीति विशारदा भी हैं। उनकी राजनीतिक सूझबूझ तथा क्षमता की प्रशंसा शिवाजी तथा जीजाबाई दोनों करते हैं। लेकिन नाटकों में उपस्थिति इतनी कम है कि सईबाई को नायिका नहीं माना जाा सकता है। सुन्दरलाल कथूरिया11 उपर्युक्त तीनों नारी पात्र को नाटक की नायिका न मानकर जीजाबाई को ही नाटक की नायिका माना है। उनका कहना है कि भले ही जीजाबाई शिवाजी की माँ है लेकिन शिवाजी के निर्माण में सर्वाधिक योगदान उसी का है। और जीजाबाई ही नाटक की सशक्त नारी पात्र है। नायक की प्रेयसी न होने पर भी जीजाबाई को नाटक को नायिका का माना उचित है। नाटककार ने जीजाबाई का चित्र एक पुत्र वत्सला नारी के रूप में चित्रित किया है। नाटक के प्रारम्भ में ही जीजाबाई शिवाजी को देश-भक्ति की प्रेरणा देते हुए कहती है--"मै पिता, पति, बन्धु-बान्धव,

सुख-स्वार्थ कुछ नहीं जानती। मैं केवल देश को जानती हूँ और तुम्हें आदेश करती हूँ कि देश की स्वाधीनता ही तुम्हारे जीवन की चरम साधना हो।''12 यही नहीं स्वाधीनता सेनानियों के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों से भी जीजाबाई13 शिवाजी को परिचित कराते हुए कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने की बात करती है।

आचोच्ययुगीन नाटकों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि नारियाँ सती भी हुआ करती थी। 'नीलदेवी' नाटक की नीलदेवी गायिका के वेश में अमीर के पास अपने पति का बदला लेने के लिए जाती हैं। और मौका पाते ही वह खंजर से अमीर की हत्या करती है उसी समय उनके अन्य सहचर राजपूत मुसलमानों पर आक्रमण करते हैं परिणामस्वरूप यवन पराजित हो जाते हैं। नीलदेवी स्वयं कहती है--''मेरी यह इच्छा थी मैं इस चांडाल का वध स्वयं अपने हाथ से करूँ। इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका सो इच्छा पूर्ण हुई। (और आघात) अब मैं सुखपूर्वक सती होउँगी।''14

'नीलदेवी' नाटक की नायिका 'नीलदेवी अपने स्वातन्त्र्य की रक्षा तथा पति के प्रतिशोध का बदला लेने के लिए तत्पर रहती हैं इससे ऐसा अन्दाजा लगाया जा सकता है कि तत्कालीन नारियों में भी प्रतिशोध की भावना विद्यमान थी। जिस समय अब्दुल शरीफ अमीर मदिरा पी रहे होते हैं उस समय रानी नीलदेवी चंडी के समान उसका रक्त पी जाती है स्वयं नीलदेवी के शब्दों में--''ले चांडाल पापी! मुझको जान साहब कहने का फल ले, महाराज के वध का बदला ले। मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चांडाल का अपने हाथ से वध करूँ।''15

शिवा-साधना नाटक में प्रेमी जी ने देश की स्वतंत्रता हेतु, समाज के सभी वर्गों को प्रेरित किया है, चाहे वह स्त्री हो, पुरूष हो या

समाज का अन्य कोई वर्ग। स्वाधीनता प्राप्ति में स्त्रियों ने भी पूर्ण रूपेण हिस्सा लिया है रामदास शिवाजी से कहते हैं कि "मैने अकाबाई और बेनीबाई को स्त्रियों में राष्ट्र धर्म की जागृति उत्पन्न करने का कार्य सौंपा है। नारी शक्ति समाज की प्रधान शक्ति है। जब तक उन्हें अपने अन्तर्बल का ज्ञान न हो, अपनी शक्ति पर विश्वास न हो, तब तक कोई देश स्वतंत्र नहीं हो सकता।"16 उपर्युक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण था।

आलोच्यकालीन नाटक में नारी होते हुए भी शिवाजी की माता जीजाबाई भी राज्य का संचालन करती हैं यही नहीं शिवाजी की पत्नी सईबाई भी राजनीति में निपुण है।17

'वितस्ता की लहरें' नाटक में भी मिश्र जी ने नारी को परपुरुष का संसर्ग पाप माना है यही नही नारी का पति से बढ़कर कोई अन्य देव नहीं होता है इन्होंने 'पतिर्हिदेवानां' की नीति को अपनाया है। ताया तथा अलिक सुन्दर के संवाद में ताया कहती है कि-- "ताया......नारी की देह की पवित्रता। तुम्हारे म्लेच्छ यवन उनकी देह न छू दे, फिर वे अपने देवता के योग्य नहीं रहेंगी।"18

उपर्युक्त संवाद के माध्यम से ऐसा पता चलता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियां पति को देवता रूप में स्वीकार करती थीं।

अलिकसुन्दर जब देवता के बारे में ताया से पूँछता है तब ताया कहती है कि--

"अलिकसुन्दर- किस देवता के?

ताया- अपने पति के। पति से बड़ा देवता इनका कोई नहीं होता। दूसरे पुरूष के संसर्ग से बड़ा पाप भी इनके लिए कोई दूसरा नहीं हैं नारी के इसी भाव इनके लिए कोई दूसरा नहीं है। नारी के इसी भाव से यहां का एक पुरूष पारस के सौ पुरुषों के बराबर है।"19

आलोच्य कालीन नाटक में नारियों का उपयोग मनोरंजन के लिए भी होता था। नृत्यादि का प्रचलन था।नीलदेवी नाटक में अमीर की मजलिस लगी हुई थी, अमीर शराब में मस्त थे उसके साथ में अन्य लोग भी बैठे थे। नीलदेवी अमीर की मजलिस में अपना वेश परिवर्तन करके प्रवेश करती है; उस समय अमीर गायिका बनी हुई नीलदेवी से उसका नाम पूँछता है, वह अपना परिचय इस प्रकार देती है--"मेरा नाम चण्डिका है। मैं बड़ी दूर से आपका नाम सुनकर आयी हूँ।"20

"अमीर- बहुत अच्छी बात है। जल्द गाना शुरू करो।

गायिका- जो हुकुम! (गाती है)

(ठुमरी तिताला)

हो........मोसे सेज़िया चढ़लि नहिं जाई हो।

बिनु हरि अति अकुलाई हो।।"21

इस प्रकार नारी के विभिन्न रूपों का निदर्शत नाटककारों ने अपनी नाट्य कृतियों में किया है। उनके महत्व को यथा स्थान प्रतिपादित किया है और आवश्यकतानुसार नारी को नाटककारों ने शिक्षा व उपदेश भी दिये हैं। उन्हें गलत मार्ग पर भटकने से रोका है और सदमार्ग की ओर प्रेरित किया है जिन्हें नाट्यकृतियों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है।

शिक्षा:--

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अवलोकन नाटककारों ने विधिवत अपनी नाट्यकृतियों में जहाँ-तहाँ किया है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था कैसी थी, उस समय क्या और कैसा पढ़ाया जाता था तथा गुरू शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे हुआ करते थे आदि तमाम बातों

की जानकारी खासकर ऐतिहासिक नाटकों में देखने को मिलती है। प्रसाद का 'चन्द्रगुप्त' नाटक इसका प्रमुख उदाहरण है, उसमें विस्तार से इसका विवरण प्रस्तुत किया गया है। अन्य नाटककारों ने भी शिक्षा सम्बन्धी चर्चाओं का उल्लेख किया है।

प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' का प्रारम्भ ही तक्षशिला के गुरुकुल आश्रम से होता है। यह गुरुकुल आश्रम विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ शिक्षार्थी देश के कोने-कोने से शिक्षा अर्जन करने के लिए आते थे। सिंहरण एक मालव था तथा चाणक्य और चन्द्रगुप्त मागध।1 गुरुकुलों में विभिन्न प्रदेशों से शिक्षार्थी आते थे। सभी समान शिक्षा ग्रहण करते थे और सबको अपने शिक्षा पर गर्व होता है तक्षशिला की शिक्षा पर सिंहरण को गर्व था इसीलिए वह कहता है--"मुझे तो तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है।"2 गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र अपने-अपने विषयों के निष्णात माने जाते थे इन गुरुकुलों में गुरू की आज्ञा सर्वोपरि होती थी यह गुरुकुल आज्ञा से परे होता था इसका स्पष्टीकरण देते हुए सिंहरण कहता है--"गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है, अन्य आज्ञाएं। अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं, राजकुमार!"3
भारतवर्ष में गुरुकुल की परम्परा अति-प्राचीन है। गुरुकुल का उल्लेख महर्षि पाणिनि4 के कुछ सूत्रों में हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों से यह पता चलता है कि भारत में अनगिनत गुरुकुल और पाठशालाएं थी,काशी या बनारस, मिथिला, उज्जैन, कोशल (मध्य प्रदेश) कुरु, आदि अनेकों राज्यों तथा जनपदों के शिक्षार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यार्थी इन विद्यालयों से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके उच्च शिक्षा के लिए तक्षशिला जाते थे। इस सन्दर्भ की पुष्टि करते हुए मुखर्जी लिखते हैं--"तक्षशिला वाज ऐ सीक नॉट ऑफ एलीमेन्ट्र ी बट हायर एजूकेशन।"5 ऐसा उल्लेख मिलता है कि भारतवर्ष की उच्च शिक्षा का केन्द्र तक्षशिला था वहाँ पर

जो आचार्य हुआ करते थे वे सभी अपने-अपने शास्त्रों या विधाओं में पारंगत हुआ करते थे। वे सभी अपने विषय के विशेषज्ञ तथा सुप्रसिद्ध आचार्य हुआ करते थे। चाणक्य भी तक्षशिला गुरुकुल के आचार्य थे गुरुकुल में सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार किया जाता था यहाँ कोई वर्ग भेद या जाति भेद नहीं था वैसे तो अधिकतर विद्यार्थी ब्राह्मण और क्षत्रिय के होते थे, कुछ वणिक पुत्र, दर्जी, तथा निम्न वर्ग के भी होते थे। इस प्रकार यह गुरुकुल व्यवस्था अपनी भारतीय संस्कृति तथा शिक्षा परम्परा को जीवन्त बनाये हुए थी।

गुरुकुल अर्थशास्त्र, दण्डनीति. राजनीति, युद्धनीति, धर्मशास्त्र तथा व्याकरण आदि की शिक्षाएं दी जाती थीं। अर्थशास्त्र के आचार्य चाणक्य का नाम सुप्रसिद्ध है। चाणक्य पाणिनि के व्याकरण तथा दण्डनीति शिक्षा स्वयं देते थे। युद्धनीति की शिक्षा लेने के लिए चन्द्रगुप्त नाटक में अर्थशास्त्र, दण्डनीति तथा राजनीति का स्पष्ट उल्लेख प्रसाद जी ने किया है।

गुरुकुल उच्चशिक्षा के लिए कम से कम 8 वर्ष का समय लगता था। वहाँ पर लगभग 16-17 वर्ष के विद्यार्थी आते थे। और 25 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करते थे। 'चन्द्रगुप्त नाटक में चन्द्रगुप्त की शिक्षा के समय का उल्लेख किया गया है जिसमें यह बताया गया है कि चंन्द्रगुप्त को वहाँ शिक्षाध्ययन में मात्र 5 वर्ष लगे थे। 6

गुरुकुल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी रही है कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति के बाद गुरूदक्षिणा देते थे उसके लिए तरह-तरह के मतभेद मिलते हैं किन्तु हम इतना की कहना ही चाहेंगे कि गुरूदक्षिणा में अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार शिष्य अपने गुरू को गुरूदक्षिणा देता था। वैसे तो जातक कथाओं में ऐसा उल्लेख मिलता है कि तक्षशिला गुरु ने प्रवेश के एक सहस्र स्वर्णमुद्राएं 7 देनी पड़ती थीं

जो छात्र शुल्क नहीं दे सकता था वह उसे गुरु की सेवा करके चुकाता था। कुछ विद्यार्थी ऐसा भी होते थे जो कि दिन में गुरु की सेवा करके रात को शिक्षा प्राप्त करते थे। एक उदाहरण ऐसा भी दिया गया है जिसमें बनारस में एक छात्र , जिसने भिक्षा मांगकर गुरुदक्षिणा चुकायी थी। योग्य विद्यार्थियों को गुरुकुल में अध्ययन का कार्य भी मिल जाता था। और इसके द्वारा भी गुरु दक्षिणा चुका दी जाती थी। प्रसाद ने नाटकों में शुल्क का उल्लेख नहीं किया हैं लेकिन चाणक्य ने एक साल तक गुरूकुल में भावी स्नातकों की अर्थशास्त्र पढ़ाकर गुरुदक्षिणा चुकायी थी।

इस प्रकार गुरूकुल को राजकोष से भी सहायता मिलती थी। तत्कालीन समाज में आयुर्वेद आदि की शिक्षा का प्रचलन था। पुरु जब अग्निवर्ण से उसका परिचय पूंछता है तो वह कहता है--

''तुम पारसपुर के स्नातक हो, अग्निवर्ण ? अग्निवर्ण- स्नातक तो मैं तक्षशिला का हूँ। जन्म मेरा सूषा में हुआ है। पारसपुर का रहने वाला मातंग था। पारस नरेश दारयवहु ने हम दोनों को एक ही साथ राजकोष से वृत्ति देकर यहाँ आयुर्वेद के अध्ययन के लिए भेजा था।''8
तत्कालीन समाज में शिक्षा के लिए विद्याभवन निश्चित किये जाते थे उनमें एक आचार्य भी होता था तथा विद्याभवन में गुरु और शिष्य के आसन में भेद होता था। विष्णुगुप्त भद्रगुप्त तथा अग्निवर्ण से कहता है--''तक्षशिला का विद्याभवन नहीं है, यह जहाँ आचार्य और शिष्य के आसन में भेद होता है।''9 राज्य पर आपत्ति आ जाने पर विद्याभवन बन्द कर दिये जाते थे तथा आचार्य और स्नातक राज्य के उद्धार हेतु समस्त दिशाओं में घूमकर सेनाएं एक करते थे। रोहिणी के निराशा भरे शब्द सुनकर विष्णुगुप्त उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि--''विष्णुगुप्त-नहीं बेटी, ऐसा होता तो तक्षशिला क़े विद्यामन्दिर के कपाट बन्द न होते।

विद्या की साधना छोड़कर देश के उद्धार में वहाँ के आचार्य और स्नातक सब दिशाओं में न निकल पड़ते। समय नहीं है फिर भी प्रयत्न हो रहा है कि केकय और अभिसार के तरुण एक साथ मिलकर तक्षशिला के आम्भी का कलंक धो दे। दक्षिण, पूर्व, और उत्तर में कार्य हमारे आचार्य और स्नातक कर रहें हैं। तीन महीने का समय भी जो अलिकसुन्दर ने दिया है तो सब ओर से सेनाएं आ जायेंगी और फिर वितस्ता का द्वार वैतरणी के द्वार से भी कठिन होगा इस हिंसक यवन के लिए।''10

इस प्रकार नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों में गुरू के लिए गुरू, गुरुदेव, आचार्य, शिक्षक तथा आर्य आदि कई शब्द प्रयोग किये हैं। अधिक सम्मान देने के लिए आर्य शव्द प्रयोग भी किया है जैसे आर्य समुद्रगुप्त, आर्यचन्द्रगुप्त, आर्य पर्णदत्त आदि सम्बोधन नाटकों में देखने को मिलते हैं नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों में शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख करके गुरुकुल प्रणाली को जीवन्त बनाये रखा है आज भी संस्कृत पाठशालाएं गुरुकुल प्रणाली के अनेकों नीति-नियमों को, शिक्षा-पद्धति का अनुसरण कर रही हैं।

- संस्कार

ऐतिहासिक नाटकों जब हम सामाजिक चित्रण की खोज करते हैं तो समाज के उन विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है जो समज से इस कदर जुड़ चुके हैं कि बिना उनके सम्पूर्ण समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती समाज से यदि संस्कारों को अलग करके देखा जाय तो समाज अधूरा-सा दिखायी देगा। क्योंकि मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त संस्कारों की ओर से बँधा हुआ है। इस बीच इसे अनेकों संस्कारों से गुजरना पड़ता है।

संस्कारों की संख्या के सन्दर्भ में सभी विद्वान एकमत नहीं है मनु ने 16 संस्कार माने हैं, अन्य विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से संस्कारों की संख्या निर्धारित की है, किन्तु मेरा आशय यहाँ पर संस्कारों के विवाद में पड़ना नहीं है, मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि ऐतिहासिक नाटकों में नाटककारों ने मानव जीवन के महत्वपूर्ण संस्कारों का उल्लेख किया है। जैसे जन्म संस्कार, मुंडन संस्कार, नामकरण, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार, तथा अन्त्येष्टि या अन्तिम संस्कार आदि।

इस प्रकार नाटककारों ने नाट्य रचनाओं में इन तमाम संस्कारों की यथा स्थान चर्चा की है। नाटककार प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में प्राय: प्रणय और विवाह को लेकर काफी गंभीर चर्चाएं हुई हैं। प्रसाद जी ने प्रेम के संबंध अपने पात्रों को काफी छूट दे रखी है। इतनी स्वतंत्रता प्राचीन भारतीय समाज में नहीं दी जा सकती थी प्रसाद के नारी पात्र भी स्वतन्त्र प्रेम को आधार बनाकर प्रणय के क्षेत्र में आगे चल पड़ी है। मनु ने नारी के दायरे को संकुचित और कमजोर बना दिया था।ऐसी स्थिति में प्रसाद जैसे नाटककारों द्वारा दी जाने वाली स्वतंत्रता को लेकर विवाद खड़ा हो सकता है। किन्तु प्रसाद आधुनिक युग में बैठकर ऐतिहासिक नाटक लिख रहे है तो वर्तमान का थोड़ा बहुत प्रभाव तो उनकी नाट्यकृतियों में आना स्वाभाविक ही है। कालिदास जैसे सुप्रसिद्ध नाटककार ने भी अपने नाटकों में उन्मुक्त प्रेम के तमाम चित्र खींचे हैं। संस्कृत नाटको में भास द्वारा विरचित प्रतिज्ञायौगन्धरायणं तथा हर्ष की रत्नावली आदि नाटकों में ऐतिहासिक चरित्र की ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना कि इसके प्रणय-व्यापार की ओर। इस प्रकार हिन्दी में भी कुछ नाटक इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार के नाटकों से उनके ऐतिहासिक स्वरूप धूमिल हो जाते हैं।

प्रसाद के नाटकों मे कुछ प्रणय के चित्र इस तरह से उभर कर आते हैं कि उन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे उस काल में स्त्री पुरूष का स्वतन्त्र प्रेम सहज रहा हो यह प्रेम कभी स्त्री की ओर से होता था तो कभी पुरूष की ओर से होता था। डॉ. जगदीश जोशी ने लिखा है- ''वाजिरा,1 कोमा,2 विजया,3 सुवासिनी4 और कल्याणी 5 का प्रणय नारी की ओर से मुखर हुआ है। अलका,6 कार्नेलिया,7 मालविका,8 ध्रुवस्वामिनी,9 देवसेना10 तथा सुरमा11 का प्रणय या तो पुरूष की ओर से मुखरित हुआ है, या दोनों के सम्बन्धों के कमिक विकास से। इससे प्रतीत होता है कि विवाह से पूर्व प्रेम के संवंध में पुरूष और स्त्री दोनों स्वतन्त्र थे। उन दिनों जाति-पांति और देशकाल से परे पारस्परिक प्रेम का ही अधिक महत्व प्रतीत होता है।''12

विवाह एक सामाजिक बंधन है जिसकी नियमित व्यवस्था प्राचीनकाल से चली आ रही है। शास्त्रकारों ने इस पर बड़े-बड़े ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं, नाटककारों ने भी उसी समाज से अपने-अपने अनुरूप ग्रहण किया और चित्रित किया नाटककार प्रसाद ने अपने नाटकों में विवाह के तमाम प्रकारों का अलग-अलग उल्लेख नहीं किया है किन्तु एक स्थान पर राक्षस विवाह13 का उल्लेख अवश्य हुआ है। पैशाच, गन्धर्व आदि अनेकों विवाहों के वर्णन प्रसाद के नाटकों में मिलते हैं।

ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत उपर्युक्त जिन मुद्दों पर चर्चा की गयी है उसके अतिरिक्त कुछ अन्य का भी समावेश सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत किया जाता है जैसे- खान-पान, वेश-भूषा, उत्सव तथा कीड़ा-विनोद आदि का भी उल्लेख नाटकों में यथा स्थान देखने को मिलता है। जैसे- 'सुरा' के लिए आसाद, सुरापात्र, मदिरा, चषक, आदि शब्दों का प्रयोग होता था। इसी तरह वस्त्राभूषण में

उत्तरीय, कंचुक, उष्णीय, परिच्छद, कमरबन्द, कुण्डल, अंगूठी, कंकण, नूपुर आदि शब्द प्रयुक्त होते थे। उत्सव के लिए विजयोत्सव, वैवाहिक उत्सव जन्मोत्सव, तथा वसंतोत्सव आदि मनाये जाते थे। क्रीड़ा विनोद के लिए मृगया, वन विहार, स्वांग, नट-नटी नृत्य संपेरी, नर्तकी, जादू, गणिका, तथा वैश्या जैसे शब्दों का प्रयोग भी नाटककारों ने किया है। इन सभी को समाज के अन्तर्गत समाहित इसलिए कर लिया जाता है कि ये सभी समाज से ही किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं।

तुलनात्मक अनुशीलन :---

साहित्य को समाज की नीव माना जाता है। साहित्य समाज का दर्पण है और प्रेरक भी है। साहित्य के बिना समाज और समाज के बिना साहित्य अधूरा है। अतएव दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

मेरे शोध-प्रबंध का प्रस्तुत अध्याय संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति का है। इसलिए हमें न तो साहित्य की अन्य विधाओं जैसे - नाटक , कहानी , उपन्यास इत्यादि पर विचार करना है और न ही समाज के उन पहलुओं पर जो कि मेरे शोध-प्रबंध से इतर हैं। वैसे यदि देखा जाय तो मानव-जीवन से लेकर मृत्युपर्यन्त की समस्त घटनाओं का समावेश समाज के अन्तर्गत हो जाता है। यथा- खान-पान, वेश-भूषा, उत्सव, विवाह, क्रीड़ा, मनोरंजन, शिक्षा, संस्कार इत्यादि। किन्तु मैंने अपने शोध-प्रबंध का मुख्य पहलू वर्ण एवं वर्णाश्रम व्यवस्था, धार्मिक स्थिति, नारी की स्थिति, संस्कार एवं शिक्षादि को बनाया है। समाज के उन पहलुओं पर यहाँ मुझे दृष्टिपात करना है जो पहलू संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासक नाटकों में उपलब्ध हैं।

वर्ण एव वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने चतुवर्ग की वर्ण-व्यवस्था पर जोर दिया है। दोनों भाषाओं के नाटककारों ने वर्ण-व्यवस्था के प्रथम वर्ण अर्थात् ब्राह्मण वर्ग की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। मनु द्वारा प्रतिपादित वर्ण-व्यवस्था को ऐतिहासिक नाटककारों ने स्वीकार किया है। हिन्दी नाटक के सशक्त ऐतिहासिक नाटककार प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक में ब्राह्मणत्व की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि-''ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धिवैभव है।'' इसी नाटक में ब्राह्मण की स्वनिर्भरता और उसके स्वाभिमानत्व की ओर संकेत करता हुआ चाणक्य कहता है कि -''ब्राह्मण न किसी के राज में

रहता है और न किसी के अन्न से पलता है , स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है।'' ब्राह्मण वर्ण की इसी श्रेष्ठता को संस्कृत नाटककार शूद्रक ने भी स्वीकार किया है। अपने नाटक मृच्छकटिकम् में शूद्रक ने ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि बताया है। अध्ययन , अध्यापन , यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ब्राह्मण के ये षटकर्म गिनाये हैं। विद्या ब्राह्मण की भूषण थी और विद्याध्ययन उनका परमकर्त्तव्य। (विद्याविशेषालंकृत किं कोऽपि ब्राह्मण युवा काम्यते।)

ब्राह्मण की तरह ही संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने क्षत्रिय वर्ण का कार्य समस्त वर्णों की रक्षा करना माना है तो वैश्य वर्ण का कार्य व्यापार करना एवं शूद्र वर्ण का कार्य उपर्युक्त सभी वर्णों की सेवा करना बताया है। ये सभी वर्ण-व्यवस्था पूर्णरूप से संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में दिखाई देती है। इसी के तहत नाटककारों ने नाटकों में वर्णाश्रम व्यवस्था का भी उल्लेख किया है। समाज को चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास) में विभक्त किया है। सभी के लिए पच्चीस-पच्चीस वर्ष का समय निर्धारण भी किया है। संस्कृत नाटककार भासादि ने तथा हिन्दी नाटककार प्रसादादि ने अपने नाटकों में इस व्यवस्था का थोड़ा-बहुत संकेत दिया है। मृच्छकटिकम् नाटक में मैत्रेय के देवपूजा निंदा पर गृहस्थाश्रम की महत्ता बताते हुए चारूदत्त कहता है -''हे मित्र ऐसा मत कहो। तन, मन, वचन तथा बलिकर्म द्वारा गृहदेवताओं का पूजन गृहस्थ का नित्य नियम है।'' हिन्दी नाटककार चन्द्रगुप्त में चाणक्य इसी व्यवस्था की ओर संकेत करता हुआ कहता है -''सौम्य ! कुलपति ने मुझे गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी है।'' समस्त जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है। इसी वर्ण-व्यवस्था का अंतिम चरण सन्यासाश्रम है। इस आश्रम में रहने के लिए व्यक्ति को नगर के द्वेष एवं अपमान से बचने के लिए सन्यास आश्रम में जाकर निवास करना पड़ता था ,

ऐसा संकेत संस्कृत तथा हिन्दी के नाटकों में प्राप्त होता है ।

धार्मिक स्थिति के अन्तर्गत समाज के लोग अपने कुलोचित देवताओं का पूजन , व्रत, उपवासादि करते थे एवं दानादि भी देते थे । संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटको में समाज किसी एक देवी या देवता पर विश्वास करता नहीं देखा जाता है । बहुदेववाद का प्रचलन था । नाटकों में सूर्य, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, स्कंद, नारद, गृहदेवता, गौरी मातृदेवियाँ , सरस्वती, छिन्नमस्ता इत्यादि देवी-देवताओं का प्रचलन प्राप्त होता है । नाटकों में वैदिक कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ तथा भविष्यवाणी आदि पर विश्वास करते हुए पात्रों को भी देखा जाता है । चाहे वह पात्र प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नाटक का यौगन्धरायण हो चाहे नीलदेवी नाटक का राजा सूर्यदेव । पूजापाठादि के विश्वास के साथ-साथ नाटकों में आँख फड़कना एवं कौए का बोलना आदि को अपसकुन भी माना जाता था ।

नारी स्थिति के अन्तर्गत नाटकों में उतार-चढ़ाव देखा जाता है । संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने नारी को कन्या, युवती, दयिता , नववधू स्त्री आदि संबोधनों से संबोधित किया है । नाटकों में नारियाँ अपने पति के उत्कर्ष या बदला लेने के लिए विभिन्न प्रकार के कृत्यों को करती देखी जाती हैं । भास के नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में वासवदत्ता जहाँ एक ओर पति के उत्कर्ष के लिए समस्त जीवन के राजसुख को त्याग कर प्रच्छन्न वेष में रहना चाहती है वहीं भारतेन्दु रचित नीलदेवी नाटक की नायिका पति का बदला लेने के लिए छद्म वेष में अमीर का बध करती देखी जाती है ।

इसी प्रकार शिक्षा के अन्तर्गत संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने प्राचीन विद्या का अनुकरण करके इस व्यवस्था का अवलोकन अपनी-अपनी नाट्यकृतियों में किया है । शिक्षा अनेकांगी थी , गुरूकुलों में

वेदाध्ययन , गांधर्व विद्या , संगीत, कला, अर्थशास्त्र, दण्डनीति, युद्धनीति तथा धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा का प्रचलन था। गुरूकुल शिक्षा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि शिक्षा प्राप्ति के बाद शिष्य स्वयं की शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार गुरूदक्षिणा देता था। शिष्य की परीक्षा के आकलन से ही गुरू की भी परीक्षा की जाती थी। गुरूकुल में आचार्यों को अपने शिष्यों पर पूर्ण अधिकार होता था। इसी ओर संकेत करते हुए चन्द्रगुप्त नाटक में सिंहरण कहता है कि -''गुरूकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती है।'' शिक्षा संबंधी उपर्युक्त सभी तत्व संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में समान रूप से दिखाई देते हैं।

समाज से यदि संस्कार को अलग कर दिया जाय तो समाज अधूरा-सा दिखाई देता है। संस्कार शब्द धार्मिक क्रियाओं के लिए प्रयुक्त होता है। धर्मशास्त्र एवं मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों में षोडस संस्कारों का संकेत मिलता है। जिनमें से समस्त संस्कार तो नहीं लेकिन कुछ संस्कारों को समाज ने स्वीकार किया है और मैंने भी उन्हें ही अपने शोध-प्रबंध में स्थान दिया है। संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने विवाह संस्कार को एक मौलिक अधिकार समझा है। ब्राह्म विवाह, पैशाच विवाह , गांधर्व विवाह, असुर विवाहादि का वर्णन दोनों भाषाओं के ऐतिहासिक नाटकों में प्राप्त होता है। इसके अलावा यज्ञोपवीत, मुंडन, अन्तेष्ठी इत्यादि संस्कारों की चर्चा नाटककारों ने यत्र-तत्र की है।

सन्दर्भ:--

समाज: परिभाषा एवं स्वरुप :---

1-समाजशास्त्र के मूल तत्व-डॉ0 वात्स्यायन, पृ0 55

2-दि थियरी ऑफ स्ट्र क्चर-श्री एस0 एफ0 नैडल,

3- समाज शास्त्रीय अवधारणाएं-एम0 ए0 गुप्त, जी0 डी0 शर्मा,पृ0 37

4-जार्ज सीमेल-सोशियोलोजी, पृ0 10

5-एन इन्ट्र ोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ सोसायटी,एफ0 एच0 ह्वाकिंग, पृ.444

6-मनुस्मृति- 9/264

7-डिक्शनरी ऑफ सोशियोलोजी-एच0 पी0 फेयर चाइल्ड, पृ0 300

8-सोसायटी-मैकाइवर, पृ0 5

9- सोसायटी-मैकाइवर, पृ0 5

10-श्रीमद्भागवत-10/44/9

11-श्रीमद्भागवत-10/60/38

12-स्मृतिशास्त्र-समाज संस्कृति और राजनीति, डॉ0 सोमनाथशुक्ल,पृ084

13-ऋगवेद-10/90/92

14 मनुस्मृति-1-106

15-मनुस्मृति-1-36

16-धर्मशास्त्र का इतिहास-डॉ वामन काणे, पृ0 267

17-स्मृतिशास्त्र-समाज संस्कृति और राजनीति, डॉ0 सोमनाथशुक्ल,पृ0149

18- समाज शास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन -बुद्धसेन चतुर्वेदी, पृ0 44

19- समाज शास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन -बुद्धसेन चतुर्वेदी, पृ0 15

20--मनुस्मृति-3/55

21-मनुस्मृति-8/389

22-मनुस्मृति-9/25

सन्दर्भ

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति :---

वर्ण एवं वर्णाश्रम व्यवस्था :---

१- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - १/१२-१३

२- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - १/८

३- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - १/३-५

४- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - १/५

५- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - १/१२-१३

६- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - १/९

७- प्रतिज्ञायौगन्धरायण-भास ,१/१६-१८

८- प्रतिज्ञायौगन्धरायण-भास ,३/१-२

९- विद्याविशेषालंकृतः किम् कोऽपि ब्राह्मण युवाकाम्यते ?

मृच्छकटिकम् अंक-२, पृ. १९७

१०- यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम् ।

मृच्छकटिकम्,अंक ,२, पृ. १६३

११- आर्य ! अधामन्त्रिताः मया भगवन्तः ब्राह्मणा : ।

सूत्रधार-कथय निकस्मिन्निमित्ते । नटी उपरज्यतेकिल भगवान चन्द्र इति ।

मुद्रारासक्ष, १/१२,

१२- मृच्छकटिकम्, अंक /

१३- मनुस्मृति- १०/८२

१४- मृच्छकटिकम् - अंक-९, पृ. ४७-

१५- रक्षणीयः राक्षसस्य प्राणाः । ५/२१८

अमात्यस्य वध प्रकृतिक्षोभः स्यात, वही ५/२२०

१६- प्रतिज्ञायौगन्धरायण-भास , १/१६-१७

१७- प्रतिज्ञायौगन्धरायण-भास ,३/१-२

१८- मालविकाग्नि मित्रम्-कालिदास, २/९-१०

१९- वही ,४/३-६

२०- मच्छकटिकम्-शूद्रक,१०/५३२

२१- तैत्तरीय ब्राह्मण ३/९/१४

२२- शुक्रनीती- १/४१

२३-''द्विज मुख्यतमः कविर्वभूव प्रथितः।'' मृच्छकटिकम्-१/३

२४- ''किमनेक नगराभिगमन जनित विभवविस्तारो वणिज युवा।''

मृच्छकटिकम् अंक २ , पृ.९७

२५- मुद्राराक्षस : १/४६

२६- वही- १/४६

२७- वही २/९०

२८- वही ५/२२९

२९- भो श्रेष्ठिन् चन्दनदास। अपि प्रचीयन्ते स्वयंवहाराणां वृद्धिलाभा :।

मुद्राराक्षस, १/५४

३०- मृच्छकटिकम्,९/५०३-५०४

३१- मृच्छकटिकम्, ६,२७७

३२- पाठयं तु संस्कृतं नृणामनीचीनां कृतात्मनाम्।

त्रिगिंनानां महादेव्या मन्त्रिजा वैश्ययोःक्वचित ॥

द्र.दशरूपक २/६४ धनजय

३३- मृच्छकटिकम् ८/पृ.३९८

३४- मृच्छकटिकम्,पृ.२९१, जयशंकर त्रिपाठी।

३५- वाप्यांस्नाति विंचक्षणो द्विजवरो मूर्खोंडपि वर्णाधमः।

फुल्लं नाम्यति वायसोडपि हि लत्रांया नामिता बर्हिणा ॥

मृच्छकटिकम्- पृ.१/३२ पृ.७८ जयशंकर त्रिपाठी

३६- मुद्राराक्षस, ५/२००

३७- संस्कृत नाटकों में समाज चित्रण-चित्राशर्मा पृ.१५९

३८- मृच्छकटिकम् अंक १० पृ.५२५

३९- मनु स्मृति : ५/८५

४०- मृच्छकटिकम् अंक १० /२२

४१- वही १/ पृ.३३

४२- स्वप्नवासवदत्तम्-भास १/५

४३- मृच्छकटिकम् ८/३

४४- स्वप्नवासवदत्तम्-भास १/१२-१३

४५- वही १/८

४६- वही १/९

४७- प्रद्वेषों नहुमानो....महती स्वता ॥

कल्यार्य, कलाशेन....किं दीयताम् ॥ स्वप्न. १/७-८

४८- मृच्छकटिकम् अंक १,पृ.३३

४९- स्वप्नवासवदत्तम्-भास , डॉ.सुधाकर पाण्डेय ,पृ.३

५०- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - १,२,३ , अंक-४/१९

५१- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - , अंक-१/४५

५२- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-१/२२,३/१३५

५३- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-७/३०७

५४- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - , अंक-३/१६२

५५- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-२/७६

५६- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-१/४६

५७- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-१/५४

५८- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-१/४०,४१,४२

५९- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - , अंक-१/५४

६०- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त

६१- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-६/२७५

६२- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-२/९७,१-२६

६३- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-१/२६

६४- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त - अंक-७/३०१-३०२

६५- मालविकग्निमित्र -कालिदास - अंक-२, पृ.७०

धार्मिक स्थिति :--

१- प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् - भास- २/२

२- प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् - भास

३- प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् - भास- ३/१-२

४- अपरोक्ष-राजव्यवहारो भवनीति ब्रवीति ।

समरावजितुषु शत्रुषु किमाह शास्त्रम् ?

-प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् - भास,

सं.डॉ.सुधाकर मालवीय- अंक ४ , पृ.२१६

५- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --२/३

६- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --६/२७

७- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- ६/२७

८- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --६/२७

९- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --अंक-४ पृ.२४७

१०- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- अंक-३,पृ.१५९

११- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- ५/११

१२- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --१/२७

१३- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- अंक १ पृ.३२

१४- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- १/२

१५- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- अंक१, पृ.३२

१६-नखलु देवराजो ममानसन मारोहति ।

प्रतिज्ञायौगंधरायणं-भास, अंक ३ पृ.८०

१७- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- ५/२१

१८- यः स्वयं कृत्तिवासाः ,मालविकग्निमित्र -कालिदास १/१

१९- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --

२०- मृच्छकटिकम् - शूद्रक - १/१

२१- मृच्छकटिकम् - शूद्रक --

२२- तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभिः ।

तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किम् विचारितैः ।।

मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- पृ.१/१६

२३- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- अंक ८ पृ.३९२

२४- मंड्गलालंकृता भाति कौशिक्या यतिवेषया ।

त्रर्या विग्रहबत्येव सममध्यात्म विघया ।

मालविकग्निमित्र -कालिदास , १/१४

२५- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् -सं.डॉ.सुधाकर मालवीय- भास - २१२

२६- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् -सं.डॉ.सुधाकर मालवीय- भास - ३/५-६ पृ.९६

२७- स्वप्नवासवदत्तम-भास, १/११

२८- येनास्मि गर्भदासो विनिर्मितो भागधेय दोषैः ।

अधिकं च न क्रे ष्यामि तेनाकार्य परिहरामि ।।

मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- ८/२५

२९- शकार -क : परलोकः विट संस्कृतकृतस्य परिणामः ।

मृच्छकटिकम् - शूद्रक --अंक ८/पृ.११५

३०- गृहस्थस्य नित्योऽयंविर्धः ।

तपासामनसा वाग्भिः पूजिता बलकर्मभिः ।

तुष्यन्ति शतिनां नित्यं देवता कि विचारितैः ।। पृ. १/१६

३१- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- अंक १ पृ.२५

३२- समाप्तजपोडस्मि । मृच्छकटिकम् अंक ३,पृ. १७९

३३- मृच्छकटिकम् - शूद्रक -- अंक ८ पृ.३९२

३४- कन्यायाः वरसम्पतिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।

भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्व न चान्य था ।।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् -सं.डॉ.सुधाकर मालवीय- भास - २/५

नारी की स्थिति :---

१- महाकवि भास - नेमिचंद्र जैन - पृ. ४८८-८९

२- स्वप्नवासवदत्तम् - भास - १/१४

३- स्वप्नवासवदत्तम् - भास - १ /१३

४- स्वप्नवासवदत्तम् - भास - अंक ३,पृ.८२

५- सम. प्राथमिक इति लिटरेचर,पृ.११८

६- स्वप्नवासवदत्तम्- १-८

७- स्वप्नवासवदत्तम् - भास - १ /१२-१३

८- स्वप्नवासवदत्तम् - भास - ५-९

९-स्वप्नवासवदत्तम् - भास - अंक ८

१०- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् : अंक-२ पृ.५२

११- वही ,पृ.१२

१२- मृच्छकटिकम्, अंक ४ पृ.१९९/२००

१३- वही, ५/८

१४- वही ,४/१५

१५- सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसांबन्घतां जनः।
यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधू शब्दावगुण्ठनम् ॥
वही , ४/२८

१६- वही अंक , १०,पृ.५

१७- वही अंक ,१० ,पृ.३-८ ३

१८- मृच्छकटिकम् : ,अंक-९० ,पृ.३-८ ३

१९- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-१,२९-३०

२०- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,२३

२१- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,४२

२२- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-१,४२

२३- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,२,६,२७७

२४- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,४२

२५- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,८

२६-मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,९,७,२७१

२७-मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- ३,१२८

२८- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-१,४०

२९-मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-१,४२

३०- कथय किमद्य भवत्या ब्राह्मणानमुपनिमंत्रणेन एततकुटुम्बनुगृहीतम्

मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-१,११

३१- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- १,१०

३२- अन्योन्यं स्वर्धमाना न च गृहविभेवेः स्वामिनो मुक्तशंकाः

साक स्त्रीभिर्यन्ते कि धर्मार्भलषितं पार्वणं-पौरमुख्याः।

मुद्राराक्षस-विशाखादत्त- ३,१२९

३३- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-१,४२

३४- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-४,१४४-१४५

३५- मुद्राराक्षस-विशाखादत्त-६,२६२

३६- कुमार संभव-४/१

३७- मृच्छकटिकम् अंक ४ पृ.१९९-२००

३८- स्वप्नवासवदत्तम् , १/१४

३९- धन्या सा स्त्रीयां तथा वेत्तिभर्ता।

भतृस्नेहात सा हि दग्धाऽप्य दग्धा॥

स्वप्न्वासवदत्तम् , १/१३

४०- मुद्राराक्षस १/१०

४१- वही , १/४२

४२- कथय किमघ भवत्या ब्राह्मणनामुपनिमन्लेष एतत्कुटुम्ब कमनुग्हदीतम्।

स्वप्नवासवदत्तम् ,१/११

४३- स्वप्नवासवदत्तम् अंक ३, पृ.८२

४४- स्वप्नवासवदत्तम् , पृ.८२

४५- आर्ये! दुर्व्यवसितमिदन्तेतदिदानीमार्यया यम्श्रुत लोकव्यवहारः

कुमारोऽनुगृहीतव्यः ।

मुद्राराक्षस , ७ /२९४

४६- मुद्राराक्षस ६/२६२ ४/१७४-१७५

४७- कुमार संभव ४/१

४८- जात मुंचमाम् ! मां विध्नं कुरू। विभेमयार्य पुत्रस्यामंगला कर्णनात।

मृच्छकटिकम् , अंक १० पृ.३९३

४९- यस्यार्थास्य सा कान्ता,धनहार्यो ह्यसौ जनः।

मृच्छकटिकम् , ५/९

५०- एता हसन्ति च रूदन्ति च वित्त हेता

विश्वासयान्ते पुरूषं नतु विश्वसन्ति।

मृच्छकटिकम् , ४/१४

५१- तस्मान्नरेण कुलशील समान्वितेन

वेश्याः श्मशान सुमना इव वर्जनीया :।

मृच्छकटिकम् ४/१४

५२- स्त्रियोः ह्यतार्थाः पुरूषं निरर्थं,

निरूपीड़ितालक्तकवत व्यजान्ति।

मृच्छकटिकम, ४/१५

५३- सुदृष्टः क्रियतमिष शिरसा वन्घतां जनः।

यत्र ते दुलर्भ प्राप्तं वधू शब्दावगुष्ठनम्।

मृच्छकटिकम , ४/२४

५४- मृच्छकटिकम् , अंक १० पृ.५९८

शिक्षा :---

१- देवा नामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं कर्तुं चाक्षुषं रूदेणेदमुमाकृतव्यतिकारे स्वांङ्गे विभक्तं द्विधा। त्रैगुण्योद्भमत्र लोकचरित्रं नानारसं दृश्यते नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम।

(मालविकाग्निमित्रम् : १/४)

२- गणदास : भद्रे , विज्ञाप्यतां देवी परमनिपुण मेधाविनी चेति।

-(मालविकाग्निमित्रम् : १/ १७

३- मालविकाग्निमित्रम् : २/८

४- उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः ।
श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु ॥
मालविकाग्निमित्रम् : २/९

५- प्रतिज्ञायौगन्धरायणं- भास, : २/१२

६- प्रतिज्ञायौगन्धरायणं- भास,२/३

७- प्रतिज्ञायौगन्धरायणं- भास, अंक -२

८- प्रतिज्ञायौगन्धरायणं- भास,अंक २/६ (पृ.५४)

१०-पात्रविशेषेन्यस्तं गुणांतरं शिल्पमाधातुः ।
जलमिवसमुद्रशक्तौमुक्ताफलम्पयोदस्यम् ॥
मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास, १/१६

११- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, ३/१

१२- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, १/१६

१३- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, १/१९-२०

१४- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, १/१५-१६

१५- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, १/१७

१६- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, १/१७-१८

१७- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास, १/१६

संस्कार :--

१- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - : १/६-८

२- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - २

३- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - ६-९

४- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - ६/११-१२

५- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - २

६- स्वप्नवासवदत्तम् -भास - ६/९,३२

७- महसकविभास - नेमिचन्द्र जैन- पृ. ४८८-८९

८- प्रतिज्ञा यौगन्धरायण - भास - ४/१७

९- प्रतिज्ञा यौगन्धरायण - भास - २,४७

१०- प्रतिज्ञा यौगन्धरायण - भास - २,४३

११- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - १, ४२

१२- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २, ७९

१३- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ७, २९१

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति

वर्ण एवं वर्णाश्रम व्यवस्था

1-अजातशत्रु-जयशंकर प्रसाद, 2/105,2/70
2-चन्द्रगुप्त- जयशंकर प्रसाद,पृ0 80
3-चन्द्रगुप्त- जयशंकर प्रसाद,पृ0 48
4-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0 18
5-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0 61
6- वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0 61
7-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,पृ0 5/136
8-चन्द्रगुप्त- जयशंकर प्रसाद,1/98
9-मनुस्मृति- 1/91
10-शिवासाधना-हरिकृष्णप्रेमी, पृ0 29
11-चन्द्रगुप्त- जयशंकर प्रसाद,1/55
12-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,4/
13-मनुस्मृति-6/2
14-अजातशत्रु-जयशंकर प्रसाद,1/37
15-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0 33

धार्मिक स्थिति

1-चन्द्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/73
2-ध्रुवस्वामिनी-जयशंकर प्रसाद,1/28
3-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/2, 4/126
4-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/29, 2/84
5-राज्यश्री-जयशंकर प्रसाद, 3/61

6-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,5/144
7-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/33
8-अजातशत्रु-जयशंकर प्रसाद,2/83
9-चन्द्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद,4/244
10-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/46
11-ध्रुवस्वामिनी-जयशंकर प्रसाद,1/20
12-ध्रुवस्वामिनी-जयशंकर प्रसाद,1/21
13-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/18
14-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,2/68
15-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,2/75
16-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,4/118
17-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,4/122,1/115,4/130
18-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,4/128
19-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,4/128
20-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,2/62
21-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,3/101
22-राज्यश्री-जयशंकर प्रसाद, 1/27
23-राज्यश्री-जयशंकर प्रसाद, 2/43
24-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद, 1/48
25-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद,1/46
26-प्रसाद के नाटक -जगदीश चंद्र जोशी -पृ.316
27-नीलदेवी, आठवाँ दृश्य
28-शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.16
29-शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.16
30-नीलदेवी, भारतेन्दु ,

31-नीलदेवी, भारतेन्दु ग्रन्थावली,पृ.536
32-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र,पृ0 68
33-शक विजय -उदयशंकर भट्ट , पृ.59
34-शक विजय -उदयशंकर भट्ट , पृ.17
35-शक विजय -उदयशंकर भट्ट , पृ.10
36-चन्द्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद, 1/10
37-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.83
38-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.16

नारी की स्थिति :--

1-ध्रुवस्वामिनी-जयशंकर प्रसाद,1/28
2-कामायनी ,इड़ा सर्ग-जयशंकर प्रसाद, पृ.162
3-स्कन्दगुप्त-जयशंकर प्रसाद, पृ.17
4-शक विजय -उदयशंकर भट्ट , पृ.87
5-शक विजय -उदयशंकर भट्ट , पृ.83
6-शक विजय -उदयशंकर भट्ट , पृ.86
7-नीलदेवी, भूमिका, भारतेन्दु
8-नीलदेवी, भूमिका, भारतेन्दु
9-नीलदेवी, भूमिका, भारतेन्दु
10-शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.34-35
11-प्रसादोत्तर स्वातंत्रयोत्तर पूर्व हिन्दी नाटकों में रस-विधान-
सुंदरलाल कथूरिया, पृ.95
12-शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.23
13-शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.31

14-नीलदेवी, भूमिका, भारतेन्दु, सं. ललिताप्रसाद शुक्ल, पृ.106
15-भारतेन्दुग्रंथावली - पृ.545
16-शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.44-45
17-मैं मूर्ख औरत हूँ , किन्तु शिवाजी की पत्नी हूँ । थोड़ी राजनीति मैं भी समझती हूँ ।, शिवासाधना-हरिकृष्ण प्रेमी -पृ.34
18-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.125
19-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.125
20-नीलदेवी, भूमिका, भारतेन्दु, सं. ललिताप्रसाद शुक्ल, पृ.103
21-नीलदेवी, भूमिका, भारतेन्दु, सं. ललिताप्रसाद शुक्ल, पृ.103

शिक्षा :--

1-चन्द्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद, 1/59
2-चन्द्रगुप्त- प्रसाद के संपूर्ण नाटक ,चिंतन प्रका., पृ.69
3-चन्द्रगुप्त- प्रसाद के संपूर्ण नाटक ,चिंतन प्रका., पृ.71
4-भाष्य -1/391 , पाणिनि, 2/1/14
5-एशियन्ट इंडियन एजूकेशन -मुखर्जी -पृ.479
6-चन्द्रगुप्त- प्रसाद ,1/75
7-जातक कथा -1/272, 4/50
8-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.39
9-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.61
10-वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.22

संस्कार :---

1-अजातशत्रु- 3/114,115

2-ध्रुवस्वामिनी-2/35,36,37

3-स्कन्दगुप्त-5/141,142,143

4-चन्द्रगुप्त-1/72

5-वही-4/195,196

6-वही-2/134

7-वही-4/110, 4/241

8-वही-3/172, 4/207, 2/131

9-ध्रुवस्वामिनी-129, 31

10-स्कन्दगुप्त-5/139,140

11-राज्यश्री-1/23,24

12-प्रसाद के नाटक- जगदीश चन्द्र जोशी पृ0 334।

13-ध्रुवस्वामिनी-प्रसाद, 3/52